राजस्थानी के पाँच महाकवि

लेखक
डा० रामप्रसाद दाधीच
प्राध्यापक
हिन्दी विभाग,
जोधपुर विश्वविद्यालय, जोधपुर

जैनसन्स
रातानाडा, जोधपुर-३४२००१

राजस्थानी के पांच महाकवि

प्रथम संस्करण, १९७९

मूल्य रु २५

देवेन्द्र वर्मा द्वारा जैनसन्स, जोधपुर के
लिए प्रकाशित
शाखायें–२५६, बापू बाजार, उदयपुर
चौड़ा रास्ता, जयपुर

मुद्रक : एम० एल० प्रिण्टर्स, जोधपुर

राजस्थानी के पांच महाकवि

अनुक्रम

दो शब्द

राजस्थानी भाषा और साहित्य पढ़ने-पढ़ाने के पिछले लम्बे अवधि-क्रम मे मेरे कई विचार और अनुभूतियाँ बनी है। इस भाषा और साहित्य की सहस्रो वर्षों की गौरवपूर्ण परम्परा व इतिहास है। अनेक प्रकार की राजनैतिक व ऐतिहासिक विरोधी परिस्थितियो की अपराजेय चुनौतियो से टकराकर अपनी आतरिक जिजीविषा के बल पर केवल जनाश्रय के आधार पर यह भाषा और साहित्य अपनी अस्मिता की रक्षा करते आये है—यह अपने आप मे क्या वन्दनीय नही है? प्राचीन काल और मध्य काल मे रचित जो राजस्थानी साहित्य हमें मिलता है, वह इस प्रदेश के समग्र जीवन की प्रतिछवि हमारे सामने प्रस्तुत करता है। आधुनिक काल का राजस्थानी साहित्यकार भी अपने परिवेश से पूर्णत जुडा हुआ है और समकालीन बोध के प्रति निष्ठावान है। सक्षेप मे, मैं कहना यह चाहता हूँ कि साहित्यिक सर्जन की गत्यात्मकता मे न तो पिछला राजस्थानी साहित्यकार निष्क्रिय था और न आज का।

इस क्रम मे, मैं एक यह बात भी अनुभव करता रहा हूँ कि विश्वविद्यालय-स्तर पर राजस्थानी भाषा और साहित्य एक वैकल्पिक विषय होने के कारण पाठ्यक्रमीय सग्रह-सकलन, शोध व समीक्षा की राजस्थानी पुस्तकें तो तैयार होती रही है किन्तु एक सामान्य राजस्थानी भाषी अपनी सस्कृति व साहित्य-सम्पदा को भूले नही, उससे जुडा रहे—इस प्रकार के प्रयत्न इस प्रदेश मे अधिक नही हुये। राजस्थानी पद्य और गद्य साहित्य के ऐसे लोकप्रिय सकलन बहुत ही कम मिलते हैं जो जन साधारण मे अपनी भाषा और साहित्य के प्रति परिष्कृत रुचि जागृत करें, उसमे अपनी सस्कृति के प्रति अनुराग उत्पन्न हो। इस ग्रन्थ के निर्माण की पृष्ठभूमि मे मेरी यही सचेतना कार्यशील रही है। मैंने १५ वी से १९ वी शताब्दी तक के कालक्रम मे से चार महाकवि—ईसरदास बारहठ, दुरसा आढा, बाकीदास आसिया, सूर्यमल्ल मीसण को चुना है और प्रस्तुत ग्रन्थ मे उनकी जीवनी व प्रतिनिधि रचनायें दी है। इस काल मे पृथ्वीराज जैसे और भी महाकवि हुए हैं किन्तु लोकजीवन के निकट जितने उपरोक्त कवि रहे व सामाजिक प्रतिबद्धता जितनी इन कवियो मे मुझे दिखाई दी, उतनी इस काल के अन्य महाकवियो मे मुझे प्रतीत नहीं हुई। मैं गलत हो सकता हूँ पर यह मेरी अपनी धारणा व मान्यता है। संग्रह के पाचवें

कवि है ऊमरदान । ऊमरदान राजस्थानी की पारम्परिक काव्य-धारा को एक यथार्थवादी सामाजिक दृष्टि देते हैं—यही से राजस्थानी कविता वास्तव मे एक नई करवट लेती है । भाषा और काव्य-भाव दोनो ही दृष्टियो से आगत भविष्य की पदचाप हमे ऊमरदान की कविता मे सुनाई देती है । ऊमरदान राजस्थानी साहित्य के एक उपेक्षित कवि भी रहे हैं । संक्षेप मे, मैंने मध्यकाल को आधुनिक काल से जोडा है । इस सग्रह मे मैंने पाच महाकवियो की सरल भाषा मे जीवनियाँ दी है, उनकी प्रतिनिधि कवितायें दी हैं और फिर उनका सरलार्थ दिया है । किसी प्रकार की समीक्षा, साहित्यिक शोध व मूल्याकन करने का यहाँ मेरा कोई उद्देश्य नही रहा ।

सामान्य राजस्थानी भाषी अपनी विस्मृत होती हुई व्यतीतकालीन साहित्यिक व सास्कृतिक परम्परा से जुडे, इस ग्रन्थ के तैयार करने में मात्र यही मेरा उद्देश्य रहा है । मेरे प्रकाशक मित्र श्री रमेशचन्द्र जैन राजस्थानी भाषा और साहित्य के प्रकाशन में जिस तत्परता से रुचि ले रहे हैं, वह स्तुत्य है । जब मैंने अपनी यह पाण्डुलिपि उन्हें दिखाई तो इसे प्रकाशित करने की उन्होने तत्काल स्वीकृति दे दी । मैं उनके इस राजस्थानी प्रेम के प्रति किन शब्दो मे कृतज्ञता प्रकट करूँ । एम एल प्रिन्टर्स, जोधपुर के मालिक श्री जगदीश ललवानी ने इस ग्रन्थ के मुद्रण मे जो कुशलता व तत्परता दिखाई है, वह भी प्रशस्य है । और अन्त मे, मैं उन सभी लेखको, सम्पादको व सकलनकर्ताओ के प्रति आभार प्रकट करना अपना पावन कर्तव्य मानता हूँ जिनके ग्रन्थो से मैंने इस पुस्तक की सामग्री जुटाई है ।

रा० प्र० दाधीच

प्रताप जयन्ती
(२६ मई, १९७६)
नैवेद्य, बखतसागर
जोधपुर

दुरसा आढ़ा : जीवन वृत

राजस्थानी वीरकाव्य के सम्बन्ध में एक विद्वान् ने कहा है- ...ानी-साहित्य वीरत्व से ओतप्रोत जीवन और वीरता के ...-प्रवाह सदृश मृत्यु का सदेश है। ये राजस्थान के गीत थे जिनमें कि अथक शक्ति एवं अविजित लोहयुक्त साहस का फेनिल स्रोत प्रवाहित होता था और जिन्होंने कि राजपूत योद्धा को व्यक्तिगत सुख तथा आकर्षण को विस्मृत करा कर सत्य, शिवं एव सुन्दरं के लिये लडने पर बाध्य किया।" इस कथन में कही पर भी अतिशयोक्ति नहीं है। जो साहित्य प्रेमी और विद्वान राजस्थानी साहित्य और इतिहास से प्रेरित है, वे इस कथन की सत्यता को तत्काल ही स्वीकार कर लेंगे। वीरता,शौर्य और आत्मोत्सर्ग का यह चित्रण राजस्थानी कवियों ने केवल उन राजाओं का ही नहीं किया है जिनके यहाँ वे सम्मान और आश्रय पाकर दरबारी कवि के रूप में रहते थे, अपितु उन साधारण व्यक्तियो का भी किया है जो मातृभूमि, भारतीय सस्कृति और जातीयता की रक्षा के लिये मर मिटे।

भारतीय इतिहास का मध्यकाल अत्यन्त अशान्ति और उथल-पुथल का समय है। हमारी राष्ट्रीयता, जातीयता और सस्कृति के लिये यह समय अत्यन्त सकट का रहा है। राजस्थान प्रदेश भी इन राष्ट्रव्यापी परिवर्तनो से अछूता कैसे रहता ? पराधीनता की लोहशृंखलाओ मे यह प्रान्त भी जकड गया, रणबांकुरे वीरों का शौर्य और स्वाभिमान पराभूत हो गया। महाराणा प्रताप जैसे कुछ मातृभूमि और स्वतंत्रता के अनन्य पुजारी अवश्य शेष रहे जिन्होंने अपना रक्त सींच कर स्वतंत्रता के दीपक को प्रज्वलित रखने का अन्तिम समय तक प्रयत्न किया। राजस्थानी के कवियों ने भी इस

सकट के समय अपने कर्तव्य को भुलाया नही। उनकी लोह-लेखनी ने राष्ट्रीयता के स्वर का उदघोष कर निर्जीव राष्ट्रीय और जातीय भावनाओ को पुनर्जीवित किया । यदि यह कहा जाय कि भारतीय काव्य में राष्ट्रीय धारा का प्रथम प्रवाह राजस्थानी मे शुरू हुआ तो इसमे कोई अतिरजना अथवा त्रुटि नही होगी। बारहठ बारुजी सौदा (चौदहवी शताब्दी का उत्तरार्द्ध) जमणाजी बारहठ, सूरायच टापरिया राठौड पृथ्वीराज, दुरसा आढा, साद्रू माला आदि ऐसे अनेक कवि हुये हैं जिन्होंने अत्यन्त निष्ठा और निर्भीकता से राष्ट्र को पद-दलित करने वाली विदेशी शक्तियो का विरोध किया और मातृभूमि के प्रेम से ओतप्रोत राष्ट्रीयता की पवित्र काव्यधारा प्रवाहित की। राष्ट्रीय काव्य की यह परम्परा आधुनिक काल तक अक्षुण्ण रूप मे बहती रही है।

आढा दुरसा राजस्थानी की इस राष्ट्रीय काव्य-धारा के एक अत्यन्त महिमामय प्रतिनिधि कवि है।

जीवनी—दुरसाजी के जीवनवृत्त से सम्बन्धित अनेक बातें अभी तक विवादाग्रस्त हैं। इनकी जन्म और मृत्यु की तिथियो के सम्बन्ध मे भी विद्वान् अभी एक मत नही है। इसका एक मात्र कारण यही है कि दुरसाजी के सम्बन्ध मे प्रामाणिक सामग्री अभी तक उपलब्ध नही हुई। कवि ने अपने सम्बन्ध मे कुछ भी जानकारी नही दी। 'इनका जन्म वि स १५९२ मे हुआ था' ऐसा अब कुछ विद्वान् मानने लगे है। ये आढा गोत्र के चारण थे। मारवाड (जोधपुर राज्य) मे धूघला नामक एक छोटा सा गाव है, इनके परिवार के लोग यही के निवासी थे। ये १२० वर्ष तक जीवित रहे और इस प्रकार वि स १७१२ मे पाचेटिया (जोधपुर राज्य) गाव मे इनकी मृत्यु हुई।

बचपन मे ही इनके माता-पिता का देहान्त हो गया था। इनके पिता का नाम मेहाजी आढा था। निर्धनता के कारण, इनके पिता, दुरसाजी के जन्म के पूर्व ही साधु हो गये थे। बगडी (जोधपुर का एक गाव) ठाकुर श्री प्रतापसिंहजी ने इनका लालन-पालन किया

था। स्वयं दुरसाजी द्वारा रचित एक सोरठा मिलता है जिसमें इस सत्य को स्वीकार किया गया है—

माथै भावीतांह, जनम तणौ क्यावर जितौ।
सोहड़ सुव पातांह, पालन हार प्रतापसी ॥

कुछ लोगों की मान्यता है कि एक जैन जती ने इनको पाला-पोसा था। किन्तु इस मान्यता का क्या आधार रहा है? किसी पुष्ट प्रमाण के अभाव में कुछ कहा नहीं जा सकता।

एक जनश्रुति के अनुसार यह कहा जाता है कि दुरसाजी को अकबर के दरबार में आश्रय प्राप्त था। डॉ. कन्हैयालाल सहल, डॉ उदयनारायण तिवारी, झवेरचन्द मेघाणी, शंकरदान, जेठा भाई देथा, डॉ. मोतीलाल मेनारिया आदि विद्वान् भी इस बात को मानते हैं किन्तु इनमें से किसी विद्वान् ने ऐसी ऐतिहासिक प्रामाणिकता प्रस्तुत नहीं की, जिससे निश्चयात्मक रूप से यह माना जा सके कि दुरसाजी वास्तव में अकबर के आश्रित कवि थे। कवि द्वारा रचित दो स्फुट डिंगल गीत अवश्य मिलते हैं जिनमें अकबर बादशाह और दिल्ली के तख्त की अतिशयोक्तिपूर्ण प्रशंसा की गई है—

बाणावलि (कै तूं) अरजण बाणावलि
सरदस रोळण (कै तूं) कंस-संहार।
सांसौ भाज हमायु सभोभ्रम (तूं)
अकबर साह कवण अवतार ॥
निगम साख मानव गत नाही
असपत कथ सांचों अणवार
वेधण भ्रमर कै तूं झख वेधण
गिरतारण कै तूं गिर-धार ॥

इन दो गीतो के अतिरिक्त दुरसाजी के शेष सम्पूर्ण काव्य मे कही पर एक छन्द भी ऐसा नही मिलता जिसमे अकबर की अथवा दिल्ली के तख्त की-प्रशसा की गई हो। इसके विपरीत 'विरुद छिहत्तरी' मे जो दुरसाजी की एक अत्यन्त महत्वपूर्ण और लोकप्रिय काव्यकृति है, इन्होने अकबर को बुरी तरह से कोसा है। इस कृति मे अकबर के लिये ऐसे कठोर और निन्दाभरे शब्दो का प्रयोग हुआ है जिन्हे कोई भी कवि अपने आश्रयदाता के लिये प्रयुक्त नही कर सकता। यह सभव है कि अपने समय के राजस्थानी के ख्याति प्राप्त और लोकप्रिय कवि होने के कारण अकबर ने इन्हे कभी अपने दरबार मे आमन्त्रित किया हो और ये वहाँ आते जाते रहे हो। अकबर के यहाँ ये आश्रित कवि के रूप मे रहे, इस विषय पर सहसा विश्वास नही होता।

इस विषय से जुडा एक प्रश्न और है और वह यह कि ये अकबर के सम्पर्क मे किस प्रकार आये ? कहते हैं, एक बार अकबर आगरा से अहमदाबाद जा रहा था। सोजत से लेकर गदोज तक की इस सारी यात्रा की व्यवस्था का भार बगडी के ठाकुर प्रताप सिंह को सौपा गया था। दुरसाजी उन दिनो प्रतापसिंहजी के आश्रय मे ही रहते थे। ठाकुर प्रतापसिंहजी ने इस व्यवस्था का सारा उत्तरदायित्व दुरसाजी के जिम्मे कर दिया। दुरसाजी ने बहुत ही कुशलता से यह सारी व्यवस्था की। अकबर इनसे बहुत प्रसन्न हुआ। कहते है इसी अवसर पर अकबर ने इन्हे 'लाख पसाव और सेवा के प्रशसा-पत्र से सम्मानित किया था।

इस विषय मे एक और मान्यता भी है। वि स १६१५-१६ के आसपास ये स्वय एक बार अकबर के अभिभावक बैराम खाँ से मिले थे। यह भेट अजमेर मे हुई थी। दुरसाजी पुष्कर-स्नान के लिये जा रहे थे और बैराम खा कार्यवश अजमेर आये थे। बैराम खाँ के कर्मचारियो ने प्रारम्भ में यह भेट नही होने दी। एक दिन

आफताव अधेर पर, अगनी पर ज्यू नीर ।
दुरसा कवि का दुक्ख पर, है वहराम वजीर ।

उसी समय वैरामखां की प्रशसा में उन्होंने कुछ और दोहे भी कहे जो इस प्रकार है—

तू वन्दा अल्लाह का, मैं वन्दा तेराह ।
तेरा है मालिक खुदा, तू मालिक मेराह ॥
पीर पराई मेटणा, एह पीर का काम ।
मेरी पीडा मेट दे, वडा पीर वहराम ।
विभीषण कू वारिधि तट, भेटे थो एक राम ।
अब मिळ्या अजमेर मे, दुरसा कू वहराम ॥

सभव है, उन दिनो दुरसाजी धनाभाव से पीडित हो । हो सकता है तब वे किसी अन्य सकट से ग्रस्त हो । वैरामखां का अपनी ऐसी प्रशसा सुन कर प्रसन्न होना स्वाभाविक ही था । कहते हैं कि उसी समय वैरामखां ने अपने सेवकों को भेजकर दुरसाजी को अपने डेरे पर बुलाया और एक लाख रुपये का पुरस्कार देकर सम्मानित किया । साथ ही यह भी विश्वास दिलाया कि वे दुरसाजी की मुलाकात अकवर से अवश्य करा देगे । अपने वादे के अनुसार दो महीने पश्चात् ही वैरामखां ने इनकी भेट अकवर से करादी । अकवर की प्रशसा में इन्होंने ओजस्वी स्वर मे कविता पाठ किया और क्रोड पसाव' का पुरस्कार प्राप्त किया । अकवर की प्रशसा मे लिखित पीछे दिये गये दो डिंगल गीत सभव है, इसी अवसर पर लिखे गये हो ।

इसी प्रसग को लेकर एक मान्यता और है । जोधपुर के प्रसिद्ध कवि लक्खाजी वारहठ तव अकवर के दरवारी कवि थे । कहते हैं, लक्खाजी ही दुरसाजी को अकवर के दरवार में ले गये थे । लक्खाजी के प्रति अपनी कृतज्ञता अर्पित करते हुये दुरसाजी ने एक दोहे मे कहा है—

दिल्ली दरगह अब-तरु, ऊँचौ फलद अपार ।
चारण लक्खो चारणा, डाल नमावणहार ॥

दुरसाजी केवल कवि ही नही थे, वे एक शूरवीर और कुशल योद्धा भी थे। इतिहास-ग्रथो मे इस तथ्य को प्रमाणित करने वाली घटनाओ का उल्लेख मिलता है। वि स १६४० मे सिरोही के राव सुरताण के विरुद्ध सीसोदिया जगमाल की सहायता के लिये अकबर ने जोधपुर के रायसिह चन्द्रसेनोत और दांतीवाडा के स्वामी कोलासिह के नेतृत्व मे एक सेना भेजी थी। उस समय दुरसाजी भी रायसिह के साथ थे। आबू पर्वत के निकट दताणी नामक स्थान पर भयकर रक्तपात हुआ। रायसिह कोलीसिह, जगमाल इत्यादि वीर मारे गये। दुरसाजी घायल होकर युद्धभूमि में गिर गये। राव सुरताण और अन्य सरदार जब उधर से निकले तो इन्होने बडी ही करुण वाणी मे कहा—"मुझे मत मारो, मैं चारण हूँ।" उस युद्ध मे राव सुरताण की सेना का स्तम्भ देवडा समरा वीरगति को प्राप्त हो गया था। दुरसाजी को कहा गया कि यदि आप चारण हैं तो देवडा समरा की कीर्ति मे कोई गीत कहें। तब उसी समय दुरसाजी ने निम्नाकित दोहा सुनाया—

धर लाखा जस डूंगरा, अद पोता सत्र हाण ।
समरै मरण सुधारियो, चहुँ थोका चहुवाण ॥

इस दोहे से राव सुरताण बहुत प्रसन्न हुये। वे इन्हे सम्मान सहित घर ले गये। इन्हे अपना पोळपात बनाया, गाँव और क्रोड-पसाव देकर विशेष प्रतिष्ठा प्रदान की।

दुरसाजी आढा अनेक इतिहास प्रसिद्ध राजाओ, वीरो और कवियों के समकालीन थे। बीकानेर के प्रसिद्ध राजा रायसिह, सिरोही के राव सुरताण, जोधपुर के राव चन्द्रसेन और मेवाड के महाराणा प्रताप के ये समकालीन थे। डिंगल के प्रसिद्ध कवि महाराजा पृथ्वीराज (पीथल), ईसरदास और सादू माला भी इनके समय मे ही हुये। पृथ्वीराज की 'क्रिसन रुकमणी री वेलि' को लेकर

जब प्रामाणिकता का विवाद उठा तो सम्मतिदाताओं में ये भी थे। इनकी सम्मति प्रारम्भ में पृथ्वीराज के पक्ष मे नही थी किन्तु बाद में एक गीत लिख कर इन्होंने बेलि की पर्याप्त प्रशसा की थी। वह गीत इस प्रकार है—

रुकमरिग गुरग लखरग रूप गुरग रचवरग,
वेल तास कुरग करै बखांरग ।
पांचमो वेद भाखीयो पीथल,
पुर्णीयो उगरगीसमो प्रराण ।।

दुरसाजी को कवि के रूप में जितना धन, कीर्ति, और सम्मान प्राप्त हुआ, वह डिंगल के किसी अन्य कवि को नही प्राप्त हुआ। कवि के अतिरिक्त उनमें अन्य अनेक मानवीय गुण थे। अपने काल के ये अत्यन्त लोकप्रिय डिंगल कवि थे। इनके गाँव पांचेटिया में अचलेश्वरजी का एक मन्दिर है। उसमें इनकी एक पीतल की प्रतिमा आज भी विद्यमान है।

दुर्भाग्य है कि दुरसाजी के पारिवारिक जीवन के सम्बन्ध में अधिक सामग्री प्राप्त नही होती। इन्होंने दो विवाह किये थे और इनके चार पुत्र थे। ये प्राय अपने सबसे छोटे पुत्र किसनाजी आढा के पास रहते थे। वि सं. १७१२ में अपने इन्ही सबसे छोटे पुत्र के यहाँ पांचेटिया गाँव में इनका स्वर्गवास हुआ।

ग्रन्थ—जिस प्रकार दुरसाजी की जीवनी के सम्बन्ध में पर्याप्त प्रामाणिक सामग्री नही मिलती, उसी प्रकार इनके द्वारा रचित साहित्य के सम्बन्ध में भी प्रामाणिक सामग्री का अभाव है। कुछ विद्वानों — डॉ. मोतीलालजी मेनारिया, डॉ. जगदीश श्रीवास्तव और श्री सीतारामजी लालस की मान्यता है कि इन्होने स्फुट काव्य के अतिरिक्त केवल तीन ही ग्रन्थ लिखे और वे इस प्रकार हैं— विरुद छिहत्तरी, किरतार बावनी और श्री कुमार अज्जाजी नी भूचर मोरी नी गजगत। डॉ. हीरालाल माहेश्वरी इनके द्वारा रचित

कुल आठ ग्रन्थ मानते है। उनके नाम इस प्रकार है—१ विरुद छिहत्तरी, २ किरतार बावनी, ३ राउ श्री सुरताण रा कवित्त, ४ दूहा सोलंकी वीरमदेवजी रा, ५ झूलणा रावत मेघा रा, ६ गीत राजि श्री रोहितासजी रा, ७ झूलणा राव श्री अमरसिंहजी गजसिंघोत रा, ८ श्री कुमार अज्जाजी नी भूचर मोरी नी गजगत।

दुरसाजी द्वारा रचित एक और ग्रंथ का पता भी लगा है और वह है—झूलणा राजा मानसिंह रा।

उपरोक्त ग्रंथो मे से केवल पाँच-छ ग्रंथ ही देखने मे आये हैं। शेष ग्रंथो के सम्बन्ध मे आज भी सन्देह और विवाद है। हम यहाँ दुरसाजी के केवल चार ग्रंथो का संक्षिप्त परिचय दे रहे है।

१ विरुद छहत्तरी—इस ग्रंथ मे कुल ७६ सोरठे है। इसमे स्वाधीनता प्रेमी, हिन्दू संस्कृति के रक्षक और राजपूती अभिमान के प्रतीक वीर राणा प्रताप की प्रशसा की गई है। अकबर की इसमे खूब भर्त्सना की गई है। राणा प्रताप और अकबर के बीच हल्दीघाटी मे हुये युद्ध का भी कुछ छन्दो मे अत्यन्त ओजस्वी वर्णन है। विदेशी पराधीनता के काल मे अकबर जैसे कठोर सामन्ती शासक की निन्दा कर, राष्ट्रीयता के स्वर को बुलन्द करना बहुत ही साहस का कार्य था। दुरसाजी ने अत्यन्त निर्भीकता से इस कृति मे मातृभूमि के स्वातंत्र्य, राष्ट्रीयता और हिन्दुत्व की रक्षा जैसी पवित्र भावनाओ को अभिव्यक्ति दी है। दुरसाजी की लोकप्रियता को इस छोटी किन्तु अत्यन्त उत्कृष्ट कृति ने शिखर पर पहुचा दिया। डिंगल काव्य मे इसका महत्वपूर्ण स्थान है।

२. किरतार बावनी—यह भक्ति - विषयक काव्य-कृति है। इसमे कुल ५१ छप्पयों मे कवि ने सृष्टिकर्त्ता (किरतार) की विराट शक्ति और लीलाओ का वर्णन किया है। परमात्मा की इच्छा और अनन्त शक्तियो के समक्ष सारा प्राणीजगत अत्यन्त बेबस और असमर्थ है। जीवित रहने के लिये मनुष्य कर्तव्य, अकर्तव्य, पाप और पुण्य करता रहता है। जीवन की नीति मे सम्बन्धित कुछ छ द भी इस कृति मे है। पूरी कृति शुद्ध डिंगल भाषा मे है। परमात्मा के

प्रति अनन्य भक्ति, उसकी विराट शक्तियो के प्रति अटूट श्रद्धा इस कृति में चित्रित हुई है। भक्त के हृदय का दैन्य, करुणा, समर्पण और अनन्य श्रद्धा की मार्मिक अभिव्यजना इस कृति म देखने योग्य है।

३. **दूहा सोलकी बीरमदेवजी रा**—इस कृति में कुल ६० दोहे है। इसमे बीरमदे सोलकी के शौर्य और वीरत्व की प्रशसा की गई है। डिंगल वीर काव्य की यह एक श्रेष्ठ रचना मानी जाती है।

४. **भूलणा राव श्री अमरसिंहजी गजसिंघोत रा**—यह कृति राजस्थानी 'भूलणा' छन्द में लिखी गई है। इसमे कुल ६४ छन्द हैं। राव अमरसिंह गजसिंघोत की वीरता और उनका भारतीय सस्कृति से प्रेम, इस कृति के विषय हैं।

इन कृतियो मे से 'विरुद छिहत्तरी' तो पुस्तकाकार प्रकाशित हुई है। राजस्थानी के जन कवि ऊमरदान ने इसे सन् १६०० मे पहली बार सम्पादित कर प्रकाशित की थी। 'किरतार बावनी' को श्री अगरचन्दजी नाहटा ने मरुवाणी (जुलाई १९५६) मे प्रकाशित करवाया था। शेष कृतियो और स्फुट काव्य के कुछ अश ही कतिपय पत्र-पत्रिकाओ मे प्रकाशित हुये हैं।

दुरसाजी ने अपनी सारी काव्य-रचना शुद्ध डिंगल भाषा मे की थी। महाकवि पृथ्वीराज की भाँति इन्होने तत्सम शब्दो का अधिक प्रयोग अपनी भाषा मे नही किया। उर्दू और फारसी के शब्दों का प्रयोग भी अपवाद स्वरूप ही मिलता है। डिंगल का परिष्कृत और प्राजल रूप इनकी काव्य भाषा मे मिलता है। दुरसाजी की यह निजी विशेषता है।

अन्य चारण कवियो की भाँति दुरसाजी ने भी अपने आश्रयदाता राजाओ और ठाकुरो की प्रशसा मे काव्य लिखा है किन्तु इनके काव्य मे अतिरजना नही है। मातृभूमि की स्वतत्रता और भारतीय सस्कृति की रक्षार्थ मुगलसामको से जूझने वाले अन्य अनेक राजपूत वीरो की प्रशसा भी इन्होने अपने काव्य द्वारा की है।

दुरसाजी हिन्दू धर्म और भारतीय संस्कृति के अनन्य उपासक थे। तात्कालीन हिन्दू समाज की विपन्नावस्था तथा अकबर की कूटनीति का अत्यन्त सजीव चित्रण इनके काव्य मे मिलता है। उन मानवीय गुणो की दुरसाजी ने मुक्तकण्ठ से प्रशसा की है जिनके द्वारा मनुष्य को मनुष्यता प्राप्त होती है।

दुरसाजी के काव्य का दूसरा महत्वपूर्ण विषय है ईश्वर की भक्ति। परमात्मा की अनन्त शक्तियो को स्वीकार करते हुये और उनके प्रति अपने आपको समर्पित करते हुये कवि ने बताया है कि इस सम्पूर्ण जगत का कर्ता और नियामक परमात्मा ही है। मानव-जीवन के दुर्धर्ष सग्राम के पीछे उसी की शक्तियां कार्य करती हैं। भगवान् की कृपा से ही प्राणी इस जीवन सग्राम से मुक्त होता है। जीवन नीति और आचरण की पवित्रता पर भी कवि न अपने अनेक स्फुट छन्दो मे जोर दिया है। व्यक्ति के सामाजिक दायित्व की ओर भी कवि ने स्पष्ट सकेत किया है। इस प्रकार दुरसाजी की काव्य-भूमि केवल आश्रयदाताओ की प्रशसा और वीरो के कीर्तिगान तक ही सीमित नही है। वे अपने काव्य मे एक व्यापक भावभूमि प्रस्तुत करते है।

काव्य-कला की दृष्टि म दुरसाजी मे वैविध्य और चमत्कार की प्रवृत्ति नही दिखाई देती। वे सहजता और सादगी प्रिय हैं। अपने पूरे काव्य मे इन्होने केवल दोहा सोरठा छप्पय झूलणा और कुछ विशेष डिगल गीतो का ही प्रयोग किया है। ये काव्य रूप राजस्थानी मे अत्यन्त लोकप्रिय रहे हैं। यही बात अलकारो के सम्बन्ध में कही जा सकती है। वेण सगाई का निर्वाह भी इन्होने अत्यन्त कठोरता के साथ नही किया है। ऐसा प्रतीत होता है कि अभिव्यजना की सहजता ही इन्हे प्रिय रही है।

अन्त मे, दुरसाजी आढा ने यद्यपि बहुत कम काव्य ग्रन्था की रचना की किन्तु उन्होने राष्ट्रीय भावना, मातृभूमि प्रम और भारतीय सस्कृति की अनन्य निष्ठा से ओत प्रोत अपने काव्य के कारण डिगल साहित्य में महत्वपूर्ण स्थान बना लिया है।

दुरसा आढ़ा : कविता

गढ ऊँचा गिरनार, नीचा आबू ही नहीं ।
अकबर अघ अवतार, पुन अवतार प्रतापसी ।

गिरनार का पर्वत ऊँचा है किन्तु आबू का पर्वत भी नीचा नही है। अकबर पाप का अवतार है। राणा प्रताप के रूप में पुण्य ने ही धरती पर अवतार लिया है।

कलयुग चलै न कार, अकबर मन अंजमै युंही ।
सतयुग सम संसार, परगट रांण प्रतापसी ॥

इस कलियुग रूपी अकबर के समक्ष किसी का कोई उपाय नही चलता, सभी लोग व्यर्थ में ही गर्व करते हैं। संसार में राणा प्रताप सतयुग के समान प्रकट हुआ है।

अकबर गरब म आंण, हिन्दू सह हाजिर हुवा ।
दीठो कोई दीवांण, करतो लटका कटहड़े ॥

हे अकबर ! इस बात से अभिमान मत कर कि सभी हिन्दू तुम्हारे चाकर हो गये। क्या किसी ने कभी महाराणा (प्रताप) को तुम्हारे शाही कटहरे के पास झुक-झुक कर सलाम करते देखा है ?

अकबर कीन्हा याद, हिन्दू नृप हाजिर हुवा ।
मेदपाट मरजाद, पगां न लग्गो प्रतापसी ॥

जब अकबर ने याद किया तो सभी हिन्दूराजा उसकी सेवा मे उपस्थित हो गये। किन्तु मेवाड की मर्यादा का उल्घन कर प्रताप उसके पैरो मे नही पडा।

म्लेच्छा आगळ माथ, नमै नही नरनाथ रो।
मो करतव्य सनाथ, प्यारो राण प्रतापसी ॥

इस राणा प्रताप का (नर नाथ) मस्तक मेच्छो के समक्ष कभी नही झुकता। कर्तव्य से वे सनाथ थे और कर्तव्य ही उन्हे प्यारा था।

चितवै चित चीतोड, चिता जलाई सो चतुर।
मेवाडा जग मौड, पावक रूप प्रतापसी ॥

इसके मन मे उस चित्तौड का ध्यान आता है जहा जौहर की ज्वाला जली थी। हे मेवाड के मुकुट राणा प्रताप! तुम अग्नि के समान हो।

कदे न नामै कध, अकबर ढिग आवै न ओ।
सूरज वस समध, पाळै राण प्रतापसी ॥

यह राणा न तो कभी अकबर के पास आता है और न उसके समक्ष अपना मस्तक ही झुकाता है। राणा प्रताप सूर्यवश के सम्बन्धो का पालन करता है (सूर्य किसी के समक्ष नही झुकता। राणा प्रताप भी सूर्यवशी है इसलिये अपनी वश-परम्परा के अनुसार वह भी किसी के समक्ष नही झुकता)

लोपै हिन्दू लाज, सगपण रोपै तुरक सू।
आरज कुळ री आज पू जी राण प्रतापसी ॥

किसी यवन से सम्बन्ध स्थापित करने पर हिन्दुत्व की मर्यादा लुप्त हो जाती है। आज इस श्रेष्ठ हिन्दू कुल की पूजी एकमात्र राणा प्रताप ही है।

अकबर पथर अनेक, के भूपति भेला किया ।
हाथ न लागो हेक, पारस राण प्रतापसी ।।

अकबर ने राजा रूपी अनेक पत्थर अपने राज्य मे एकत्र किये किन्तु उसे पारस रूपी राणा प्रताप नही मिल सका ।

सुख हित स्याळ समाज, हिन्दू अकबर वस हुआ ।
रोसीलो मृगराज, पजै न राण प्रतापसी ।।

सुख भोगने के लिये अन्य अनेक हिन्दू राजा गीदड समाज की भाँति अकबर के राज्य मे एकत्र हो गये। क्रुद्ध मृगराज के समान राणा प्रताप उसके अधिकार मे नही आता ।

अकबर कूट अजाण, हिया फूट छोडे न हठ ।
पगा न लागन पाण, पणधर राण प्रतापसी ।।

अकबर की कूट नीत का पता नही लगता किन्तु वह अभागा प्रताप को अधीन करने का हठ नही छोड रहा है। किन्तु राणा प्रताप भी प्रणधारी है। उसने भी प्रण कर रखा है। कि कोई भी शक्ति उसे अकबर के चरणो मे नही झुका सकती।

है अकबर घर हाण, डाण ग्रहै नीची दिसट ।
तजै न ऊँची ताण, पौरस राण प्रतापसी ।।

अकबर के घर मे हानि हो रही है इसीलिये खिराज लेते समय भी उसकी दृष्टि नीची ही रहती है। ऊँचे विचारो वाला राणा प्रताप अपने पौरुष को नही छोडता।

अकबर हियै उचाट, रात दिवस लागी रहै ।
रजवट वट समराट, पाटप राण प्रतापसी ।।

अकबर के हृदय मे यह सन्देह सदा बना रहता है कि क्षत्रीयत्व की रक्षा करने वाले सम्राटो मे प्रताप ही सबसे बडा है ।

अकबर समद अथाह, तिहि डूबा हिंदू तुरक ।
मेवाडो जिण माह, पोयण फूल प्रतापसी ।।

अकबर अथाह समुद्र के समान है जिसमे भारतवर्ष के हिन्दू और मुसलमान सभी डूब गये । परन्तु मेवाड का राणा प्रताप उस समुद्र मे कमल के फूल के समान ऊपर ही तैर रहा है ।

अकबरिये इक वार, दागल की सारी दुनी ।
अणदागल असवार, रहिया राण प्रतापसी ।।

अकबर ने एक वार मे ही सारी दुनिया को दाग लगा दिया । (अकबर के काल मे घोडो की पीठ पर दाग लगाने की प्रथा प्रचलित हुई थी । यह इसलिये कि उक्त घोडे की पीठ पर लगे दाग से विदित हो जाय कि उसके स्वामी ने अकबर की आधीनता स्वीकार करली है ।) किन्तु एक राणा प्रताप ही बिना दाग वाले घोडे पर सवार होता है ।

अकबर घोर अधार, ऊघाणा हिन्दू अवर ।
जागै जुग दातार, पोहरै राण प्रतापसी ।।

अकबर रात्रि के घोर अधकार के समान है । अन्य हिन्दू सम्राट इस अधकार मे ऊँघने लगे है । किन्तु ससार को प्राण-दान करने वाला दानी राणा प्रताप अकेला पहरा दे रहा है ।

अकबर कनै अनेक, नम-नम नीसरिया नृपत ।
अनमी रहियो एक, पहुमी राण प्रतापसी ।।

अकबर के निकट से अनेक राजा मस्तक झुकाकर निकल गये । पृथ्वी पर अकेला राणा प्रताप ही शेष रहा जिसने अकबर को मस्तक नही झुकाया ।

करै खुसामद कूर, करै खुसामद, कूकरा ।
दुरस खुसामद दूर, पुरस अमोल प्रतापसी ।।

या तो कोई नीच व्यक्ति किसी की खुशामद करता है या फिर कुत्ता करता है। कवि दुरसा कहते है कि राणा प्रताप अमूल्य व्यक्ति है। उनमे खुशामद दूर ही रहती है।

अकबर जग उफाण, तग करण भेजे तुरक ।
राणावत रिढराण, पाण न तजै प्रतापसी ।।

युद्ध के आवेग मे अकबर राणा प्रताप को परेशान करने के लिये मुसलमान सैनिको को भेजता है। मेवाड के अन्य राणाओ के समान राणा प्रताप भी पौरुष को नही छोडता। अर्थात् वह उनका मुकाबला करता है।

थिर नृप हिन्दुस्थान, लातरिग्या मग लोभ लग ।
माता भूमी मान, पूजै राण प्रतापसी ।।

हिन्दुस्थान के अडिग हिन्दू सम्राट लोभ के वशीभूत होकर पथ भ्रष्ट हो गये। किन्तु राणा प्रताप पृथ्वी को माता मानकर उसकी पूजा करता है।

सेलां अणी सनान, धारा तीरथ मे धमै ।
देण धरम रणदान, पुरट सरीर प्रतापसी ।।

हे राणा प्रताप ! भालो की नोको मे स्नान करते हुये और तलवार की धारातीर्थ मे प्रवेश कर स्वधर्म की रक्षा के लिये, इस धर्म युद्ध मे स्वर्ण रूपी शरीर का दान देने वाला एक तू ही है।

दिल्ली हूँत दुरुह, अक्बर चढियो एकदम ।
रग रसिया रगरुह, पलटे केम प्रतापसी ।।

अकबर ने दिल्ली से अचानक कठिन सेना लेकर आक्रमण कर दिया। युद्ध प्रेमी राणा प्रताप रणनीति को कैसे बदले ? रण रीति यही है कि आक्रमण का उत्तर दिया जाय।

ढिग अकवर दळ ढाण, अग अग डाढै आथडै ।
मग-मग पाडै माण, पग-पग राण प्रतापसी ॥

अकवर की सेना का समूह पर्वत-पर्वत पर लडता झगडता है। किन्तु राणा प्रताप प्रत्येक मार्ग पर उसके गर्व का भजन करता है।

चित मरणा रण चाय, अकवर अधीनी विना ।
पराधीन दुख पाय, पुनि जीवै न प्रतापसी ॥

राणा प्रताप के मन मे एक मात्र यही इच्छा है कि चाहे युद्ध मे प्राण चले जाय किन्तु अकवर की आधीनता स्वीकार नही करनी है। पराधीनता के दारुण दुःख को उठाकर फिर जीवित रहने की प्रताप की इच्छा नही है।

गोहिल कुळ धन गाढ, लेवण अकवर लालची ।
कोडी दे नहिं काढ, पण दृढ राण प्रतापसी ॥

गुहिलोत वश (मेवाड के राणा) की अभिमान रूपी गाढी कमाई को लूटने के लिये अकवर अत्यन्त लालायित हो रहा है। राणा भी अपने प्रण पर अटल रहने वाला है। वह एक कोडी भी निकाल कर नही देगा।

अकवर मच्छ अमाण, पुच्छ उछालण वल प्रवल ।
गोहिलवत गहराण, पयोनिधि प्रतापसी ॥

अकवर रूपी विशाल मगरमच्छ अपनी प्रवल शक्ति से पूंछ उछालता है किन्तु गहलोत पुत्र अभिमानी राणा प्रताप समुद्र के समान है जिसमे अकवर की पूंछ का कुछ असर नही होता।

अकवर दळ अप्रमाण, उदयन पट घेरे अनय ।
खागा वळ खूमाण, साहा दळण प्रतापसी ॥

अकबर की सेना ने उदयपुर को अपनी अनीति से घेर लिया किंतु खुमाण वंश का प्रतापसिंह अपनी तलवार से बादशाह की सेना को नष्ट कर देता है।

रोपै अकबर राड, ले हिन्दू कूकुर लखा।
बी'भरतो बाराह, पाडे घणा प्रतापसी॥

कुत्तो के समान कायर अनेक हिंन्दू सैनिको को लेकर अकबर ने युद्ध प्रारम्भ कर रखा है। किंतु बिगडे हुये शूकर की भाति राणा प्रताप अकेला ही उसकी सेना के अनेक सिपाहियो को मार डालता है।

अकबर तडफै आप, फतै करण च्यारु तरफ।
पण राणो परताप, हाथ न चढै हमीर हठ॥

अकबर स्वय चारो ओर विजय प्राप्त करने के लिए बेचैन है। किंतु हमीर का वशज राणा प्रताप उसके कब्जे में नही आता।

अकबर किला अनेक, फतह किया निज फौज सू।
अकल चलै नह एक, पाधर लडे प्रतापसी॥

अकबर ने अपनी फौज के बल पर अनेक दुर्गो को जीता किन्तु राणा प्रताप खुले मैदान मे समतल भूमि पर लडता है। इसलिये अकबर की बुद्धि काम नही करती।

हिरदे ऊणो होत, सिर अकबर धूणै सदा।
दिन दुणो दैणोत, पूणो हुँ न प्रतापसी॥

अकबर सदैव अपना सिर धुनता है, उसका हृदय हमेशा उदास रहता है। प्रताप के कारण उसकी दहशत दिन-प्रतिदिन बढती ही जाती है, तनिक भी कम नही होती।

क्ळपै अकबर काय, गुण पू गीघट छोडियो ।
मिणधर छाबड माय, पडै न राण प्रतापसी ।।

पू गीधर चतुर सपेरे की भाँति अकबर बहुत ही छटपटा रहा है किन्तु मणिधारी सर्प रूपी राणा प्रताप उसकी छबडी मे नही आ पाता ।

महि दाबण मेवाड, राड-धाड अकबर रचै ।
विपै बिपायत वाड, प्रथुळ पहाड प्रतापसी ।।

मेवाड की भूमि हडपने के लिये अकबर आक्रमण करता है और युद्ध करता है । किन्तु मेवाड के चारो ओर कष्ट सहिष्णु प्रताप रूपी विशाल पर्वत की रोक लगी हुई है ।

वधियो अकबर वैर, रसत गैर रोकी रिपू ।
कद मूळ फळ कैर, पावै राणा प्रतापसी ।।

अकबर से शत्रुता ठन गई इसलिये शत्रु ने मार्ग रोक कर रसद रोक दी । राणा प्रताप कद मूल फल और कैर खाकर काम चला लेते हैं ।

भागै सागै भाम, अमृत लागै ऊमरा ।
अकबर तळ आराम, पेखै जहर प्रतापसी ।।

महाराणा प्रताप अपनी पत्नी के साथ इधर-उधर डोल रहे हैं । गूलर के फल भी उन्हे अमृत के समान मीठे लगते है । किन्तु अकबर की आधीनता मे सुखपूर्वक रहना वे जहर के समान समझते है ।

लघण कर लकाळ, सादूलो भूखो सुवै ।
कुळ वट छोड सियाळ, पैडन देत प्रतापसी ।।

शेर की भांति वीर राणा प्रताप उपवास कर भूखा ही सो रहा है किन्तु वह अपने कुल-मार्ग को छोड कर गीदड का शिकार करने के लिये एक कदम भी आगे नही बढाता।

अकबर मेंगळ अच्छ, माभळ दळ घूमै मसत।
पँचानन पळभच्छ, पटके छरा प्रतापसी॥

सेना के मध्य अकबर मस्त हाथी की भांति घूम रहा है किन्तु मांसाहारी सिंह के समान राणा प्रताप उसे पंजा मार कर गिरा देता है।

दती दळ सू दूर, अकबर आवै एकळो।
चौडे खळ चकचूर, पळ मे करै प्रतापसी॥

अपनी सेना से दूर होकर अकबर अकेला सूअर की भांति आ रहा है। राणा प्रताप एक पल में खुले मैदान में अपने शत्रु को नष्ट कर देता है।

अकबर करै अफड, मद प्रचड मारग लगै।
आरज भाण अखड, प्रभुता राण प्रतापसी॥

अकबर ढोंगी है, उसका भयकर अहकार नष्ट हो गया है। किन्तु राणा प्रताप की प्रभुता और श्रेष्ठ अभिमान अखण्ड हैं। वे कभी नष्ट नहीं हो सकते।

छट सू ओघट घाट, पसियो अकबरियो घणो।
इळ चनण उपवाट, परमळ उठो प्रतापसी॥

अकबर ने उचित और अनुचित तरीके से प्रताप को बहुत ही दुख दिया किन्तु इससे धरती पर प्रताप रूपी चन्दन की सुगन्ध ही प्रकट हुई अर्थात् उसकी कीर्ति ही फैली।

अकबर जतन अपार रात दिवस रोकण करै।
पूगी समदा पार, पणी राण प्रतापसी ॥

यद्यपि अकबर राणा प्रताप की कीर्ति को रोकने की अनेक कोशिशें रात-दिन करता है फिर भी राणा की कीर्ति समुद्र के पार पहुच गई।

वसुधा कियो विख्यात, समरथ कुळ सीसोदिया।
राणो जमरी रात, प्रगट्यो भलो प्रतापसी ॥

सिसोदियों के समर्थ कुळ को राणा प्रताप ने पृथ्वी पर प्रसिद्ध कर दिया। राणा प्रताप का जन्म किसी यश की शुभ रात्रि मे हुआ था।

जिणरो जस जगमाय, जिणरो जग धिन जीवणो।
नैडो अपजस नाय, पणधर थिनो प्रतापसी ॥

यशस्वी व्यक्तियो का ही जीवन ससार मे धन्य है। अपयश जीवन के निकट भी न आ पाये —हे राणा प्रताप तुम्हारा यह प्रण था। तुम धन्य हो!

अजरामर धन एह, जस रह जावे जगत मे।
सुख-दुख दोनू देह सुपन समान प्रतापसी ॥

ससार मे यश बना रहे यही व्यक्ति का अमर धन है। हे राणा प्रताप! सुख और दुख तो मानव शरीर मे स्वप्न के समान अस्थिर हैं।

अकबर जासी आप, दिल्ली पासी दूसरा।
पुनरासी परताप, सुजस न जासी सूरमा ॥

अकबर एक दिन इस संसार को छोड़ कर चला जायगा दिल्ली पर किसी दूसरे का अधिकार हो जायेगा। किन्तु हे पुण्य-राशि शूरवीर प्रताप! तुम्हारा यश तो संसार में अमर रहेगा।

सफळ जनम सुदतार, सफळ जनम जग सूरमा।
सफळ जोग जप सार, पुर त्रिय प्रभा प्रतापसी॥

या तो दानी का जीवन सफल है या फिर किसी शूरवीर का जन्म सफल है। या फिर योग और तपस्या में व्यतीत किया हुआ जीवन सफल है। किन्तु राणा प्रताप की कीर्ति का प्रकाश तो तीनों लोकों में यों ही फैला हुआ है।

सारी वात सुजाण, गुण सागर गाहक गुणा।
आयोडो अवसाण, पातरिये न प्रतापसी॥

राणा प्रताप सभी प्रकार से सज्जन और विवेकशील है। वे गुण सागर और गुणों के ग्राहक हैं। आये हुए अवसरों को वे कभी नहीं खोते।

अंतिम एह उपाय, विस्वंभर न विसारिये।
साथे धरम सहाय, पळ पळ राण प्रतापसी॥

अन्तिम उपाय यही है कि परमात्मा को न भूला जाय। हे राणा प्रताप! प्रत्येक क्षण धर्म की शक्ति सहायता करने के लिये तुम्हारे साथ है।

मनरी मनरे माय, अकबर रै रहगी अकस।
नरवर करिये नाय, पूरी राण प्रतापसी॥

राणा प्रताप को अधीन करने की अकबर की इच्छा उसके मन में ही रह गई। नरों में श्रेष्ठ हे राणा प्रताप! उसकी यह इच्छा कभी पूर्ण मत होने देना।

अकबरिये हस आस, अंब खास भांखै अधम ।
नाखै हियै निसास, पास न रांण प्रतापसी ।।

हताश होकर अकबर आम खास को देखता है और प्रताप को अपने पास न देख कर (अधीन) हृदय से विश्वास छोड़ता है।

आभा जगत उधार, भारत वरस भवान भुज ।
आतम सम आधार, पीतम रांण प्रतापसी ।।

संसार में प्रकाश का उद्धार करने वाले, भारत वर्ष रूपी भवन की शक्तिशाली बुर्ज हे राणा प्रताप ! तुम आत्मा के समान इस शरीर के सम्बल हो और सबके प्रिय स्वामी हो।



ईसरदास बारहठ : जीवनी

राजस्थानी भाषा के साहित्य-कोश को समृद्ध करने वाले, राज घराने से लेकर झोंपडी तक मे रहने वाले लोग रहे हैं। जाति की दृष्टि से भी इस प्रान्त मे रहने वाली सम्भवत सभी जातियों के लोगो ने इस कार्य मे अपना योगदान दिया है, किन्तु जैनो और चारणो का योग सर्वाधिक रहा है। इसी आधार पर, राजस्थानी साहित्य का वर्गीकरण करते हुये जैन-साहित्य और चारणी-साहित्य नाम से भी भेद किये जाते हैं। यहाँ यह बात प्रसगवश ही कही है। चारण कवियो ने वीर भाव का साहित्य ही अधिक लिखा है इसलिये कभी-कभी चारणी साहित्य से युद्ध और वीरता के साहित्य का अर्थ लिया जाने लगता है। वास्तविकता यह नही है। चारण कवियो ने शक्ति के साथ भक्ति धर्म, नीति, अध्यात्म और शृ गार के साहित्य की भी रचना की है। इन विषयो पर रचा गया उनका साहित्य भी कम श्रेष्ठ और उत्कृष्ट नही है। राजस्थानी के सम्पूर्ण चारणी साहित्य का अवलोकन करने पर यह प्रकट हो जाता है कि खड्ग की तेजोमयी गाथा गाने वाले चारणो मे भक्त की दीनता और विनय भी है रूप माधुरी पर आसक्त होने वाला सरस हृदय भी है। इन चारण कवियो मे कुछ तो ऐसे हुये जिन्होंने केवल राज प्रशस्ति, युद्ध वीरता अथवा किसी अन्य एक ही विषय पर लिखा किन्तु कुछ ऐसे भी हुये है जिनमे भक्त सन्त, रसिक और वीर—सभी के एक ही स्थान पर दर्शन होते है।

राजस्थानी साहित्य के मध्यकाल मे ईसरदास बारहठ एक ऐसे ही चारण कवि हुये है जिनमे शक्ति और भक्ति का एक स्थान पर सगम हुआ है। हाला झाला रा कुण्डलिया' जो डिंगल वीर काव्य की एक महान् कृति मानी जाती है इन्हीं ईसरदासजी की

लोह लेखनी से प्रस्तुत हुई तो भक्ति का अमर काव्य 'हरिरस' को भी इनकी श्रद्धामयी भक्त गिरा ने ही जन्म दिया। 'हाला झाला रा कु डलिया' के अतिरिक्त भी ईसरदासजी ने वीर काव्य लिखा है। इनके द्वारा रचित वीर रस के अनेक डिंगल गीत और स्फुट छन्द मिलते हैं पर इन्होने भक्ति की रचनाये निश्चित रूप से अधिक लिखी हैं। इसीलिये राजस्थानी साहित्य मे ईसरदासजी भक्त और सन्त कवि के रूप मे अधिक प्रसिद्ध है। प्रारम्भ मे यह केवल अपने आश्रयदाताओ की प्रशसा, युद्ध और वीरता का ही काव्य लिखते थे किन्तु अपने एक गुरु से प्रभावित होकर जिनका विस्तार से उल्लेख आगे कर रहे है, यह केवल भक्ति की रचनाये करने लगे और 'ईसरा परमेसरा' बन गये।

ईसरदासजी ने अपना सम्पूर्ण साहित्य डिंगल भाषा में ही लिखा है। इनके इस साहित्य मे डिंगल भाषा के दो रूप दिखाई देते हैं। एक रूप है कठिन और अलकृत भाषा का–'हाला झाला रा कुंडलिया' व अन्य डिंगल गीतो की भाषा मे यह रूप देखा जा सकता है। दूसरा रूप है सरल जनभाषा का। 'हरिरस' इसी भाषा में लिखा गया है।

बारहठजी जन्मसिद्ध कवि थे। धर्मशास्त्रो का उनका अध्ययन प्रगाढ था। क्षत्रियोचित वीर भाव और ओजस्वी वाणी के साथ भक्त की विनय और दीनता भी उनको प्राप्त थी। यही कारण रहा कि वे वीर और भक्ति—दोनो का उत्कृष्ट काव्य राजस्थानी को दे सके। तुलसी के रामचरित मानस की भाति 'हरिरस' का पाठ भक्तजन बडी श्रद्धा के साथ आज भी करते है।

जीवन वृत्त ईसरदासजी के जीवन से सम्बन्धित विस्तृत घटनाये अभी पूर्णत उपलब्ध नही हैं। राजस्थान तथा गुजरात के कुछ इतिहास तथा साहित्य-ग्र थो मे जो कुछ जानकारी मिलती है, उसके आधार पर यह सक्षिप्त जीवन वृत्त दे रहे है। इनका जन्म मारवाड राज्य के मालानी परगने के भाद्रेस गाँव में रोहडिया बारहठ (चारणो की एक शाखा) कुळ मे वि स १५९५, चैत्र शुक्ला ९ को हुआ था। इनके पिता का नाम सूजोजी अथवा सूरोजी और

माता का नाम अमरांबाई था। इनके पूर्वज मारवाड के राजा राव धूहड (वि सं १३४९-६६) और राव रायपाल (१३६६ ७०) के,पोळपात थे। इन्हे इन राजाओं से जागीरें भी मिली थी। ईसरदासजी की जन्म तिथि का साक्षी एक दोहा प्रसिद्ध है—

पन रासो पिच्चाणवें, जनम्यां ईसरदास।
चारण वरण चकार में, उण दिन हुवो उजास ।।

ईसरदासजी के बाल्यकाल में ही इनके माता-पिता का देहान्त हो गया था। इनके काका आशानन्द (आसोजी के नाम से भी प्रसिद्ध हैं) ने इनका पालन-पोषण किया। आशानन्दजी स्वयं डिंगल के प्रसिद्ध कवि और विद्वान थे। ईसरदासजी की शिक्षा भी इन्ही के द्वारा हुई। विद्वानो और कवियो की सभाओं और राज-दरबारों में ये अपने काका के साथ जाते। इससे ईसरदासजी का ज्ञान क्षेत्र और भी व्याप्त हुआ। अब तक वे वीररस की सुन्दर काव्य-रचना भी करने लगे थे। राज दरबारों मे इनकी भी प्रसिद्धि होने लगी।

अपने काका आशानन्द के साथ ये एक बार द्वारिका की यात्रा पर गये। तब इनकी अवस्था २०-२१ वर्ष की थी। मार्ग मे जामनगर के रावल के यहाँ अतिथि के रूप में रहे। रावल साहब काव्य-प्रेमी भी थे। उन्होने अपने राज दरबार मे मारवाड के इन दोनो कवियों का हार्दिक स्वागत किया। ईसरदासजी के काव्य ने उन्हें बहुत प्रभावित किया। उनके हार्दिक व आग्रहपूर्ण आमन्त्रण पर द्वारिका से लौट कर ईसरदासजी रावल साहिब के यहाँ स्थायी रूप से रह गये। इन्हें क्रोडपसाव (चारण कवियों को दिया जाने वाला एक करोड रुपये का पुरस्कार) और कुछ गाँव भी रावळजी से प्राप्त हुये। इस प्रसग का भी एक दोहा मिलता है—

क्रोड पसाव ईसर कियो, दियो सयांणो गाम।
दता सिरोमण देखियो, जगसर रावळ जाम ।।

धन और कीर्ति के अतिरिक्त जाम नगर मे ईसरदासजी को एक और भी लाभ हुआ। रावळ साहिब के दरबार मे एक पण्डित रहते थे—पीताम्बर भट्ट। इन भट्टजी को अपना गुरु बना कर ईसरदासजी ने इनसे संस्कृत भाषा दर्शन पुराण और धर्म शास्त्रो का अध्ययन किया। इनके सम्पर्क मे कवि के जीवन मे एक महत्व पूर्ण मोड आया और वह था भक्ति की ओर प्रवर्तन। अब ये भक्त कवि ईसरदास कहलाने लगे। अपने भक्ति के प्रसिद्ध ग्रंथ हरिरस मे अपने इन गुरु की कवि ने वन्दना की है –

लागू हू पहली लुळै पीताम्बर गुरु पाय।
भेद महारस भागवत पायो जास पसाय॥

काव्य निर्माण के साथ अब ईसरदासजी और अपने आराध्य कृष्ण की आराधना मे रम गये। ये ईसरा परमेसरा (ईसरदास परमेश्वर स्वरूप) बन गये। कहते है इन्हे भक्ति और आराधना मे अपूर्व सिद्धियाँ प्राप्त हुई। इनके चमत्कारो को लेकर कई जन श्रुतियां आज भी प्रचलित हैं। सर्प के काटे हुए को इन्होने जीवित कर दिया खारे पानी के कुए मे मीठा पानी हो गया एक बार चांद नही उगा—आदि। एक जन श्रुति तो बहुत ही प्रसिद्ध है।

एक बार ईसरदासजी जामनगर के निकट ही बहने वाली वेणु नदी पर बसे हुये एक छोटे से गाव म पहुचे। वहा सागा नामक एक राजपूत रहता था—उसने इनकी बडी आवभगत की। अपनी भक्ति भावना मे प्रेरित होकर सागा इन्हे एक कम्बल देने लगे। ईसरदास ने कहा कि वापिस लौटते समय ले लूंगा। दैवयोग से कुछ दिनो पश्चात सागा की नदी मे बह जाने से मृत्यु हो गई। मरते समय अपने साथियो द्वारा जो नदी के किनारे बच गये थे उसने अपनी मा को सन्देश भेजा कि ईसरदासजी को वह कम्बल अवश्य दे दें। ईसरदास जब यात्रा करते हुये पुन उस गाव मे आये तो सागा की मा से उन्हे उस दुर्घटना का पता लगा। वे तत्काल उस स्थान पर पहुँचे जहाँ सागा नदी म डूब गया था। उन्होने सागा को पुकारा

और कहते हैं कि सांगा अपने पशुओं सहित आ गया। इस घटना से संबंधित कुछ दोहे आज भी प्रचलित हैं—

नदी वहंतो जाय, सादज सांगरिए दियो।
कहज्यो म्हारी माय, कवि नै दीजै कांमळी ॥

बाहुरा वहतो जाय, साद दियंतो साथियां।
कहज्यो जायर माय, कवि नै देवै कांमळी ॥

ईसर री आवाज, सांगा जळ थळ सांभळै।
कामळ देवण काज, वेगो वळ सिव कर वयण ॥

इस प्रकार के चमत्कारों ने इनको बहुत ही लोकप्रिय बना दिया।

उन्होंने कुल दो विवाह किये थे। इनके पाच पुत्रों का उल्लेख इतिहास ग्रंथों में मिलता है।

जामनगर रावल साहिब के यहां से चालिस वर्ष तक रहे। फिर ये अपनी जन्मभूमि भाद्रेस लौट आये। यहां लूनी नदी के किनारे एक कुटिया बना कर भक्ति में लीन हो गये। इसी स्थान पर वि.सं. १६७५ में इनका देहात हुआ। मृत्यु के समय इनकी आयु ८० वर्ष थी।

ईसरदासजी के ग्रंथ—ईसरदासजी मूलरूप से भक्ति के कवि थे। इन्होंने छोटे-बड़े कुल १६ ग्रंथ लिखे। डा. मोतीलालजी मेनारिया इनके द्वारा रचित केवल १२ ग्रंथ मानते हैं। इन ग्रथों के अतिरिक्त इनका स्फुट साहित्य भी मिलता है। ग्रन्थ इस प्रकार हैं—१ हरिरस, २ छोटो हरिरस, ३ देवियांण, ४ गुण रास लीला, ५ गुण आगम, ६ गुण वैराट, ७ गुण निंदा-स्तुति, ८ गुण भगवन्त हंस, ६ गुण बाल लीला, १० गुण सभापर्व, ११ गुरड पुराण, १२ आपण, १३, दांण लीला, १४ सांमळा रा दूहा, १५ वीस-दुमालो सृष्टि उत्पत्ति रो

गीत, १६ साखियां, १७ पद और वाणियां, १८ हालां झालां रा कुंडलिया, १९ गीत-छन्द।

उपरोक्त ग्रथों में अधिकाश भक्ति के ग्रथ हैं। इनमें भी कवि को ख्याति देने वाले ग्रन्थ कुछ ही हैं जिनमे हरिरस, हाला झाला रा कुंडलिया और देवियाण प्रमुख हैं। 'हाला झाला रा कुंडलिया' वीर रस का ग्रंथ है। शेष भक्ति के सभी ग्रन्थों के विषयो में समानता है। इन ग्रन्थो में परमात्मा के विविध अवतारो, उनकी महिमा, उनकी लीलाओ आदि का चित्रण हुआ है। इन ग्रथो की भाषा और छन्दो में भी साम्य है। ये सारे ग्रन्थ मुक्तक हैं। हरिरस, देवियाण, हाला झाला रा कु डलिया के अतिरिक्त दाण लीला, छोटो हरिरस, सामळा रा दूहा, वीस दुआलो ग्रन्थ भी विविध स्थानो से प्रकाशित हैं। ईसरदासजी की कविकीर्ति के स्तम्भ तीन ही ग्रन्थ माने जाते हैं—वे हैं हरिरस, हाला झाला रा कु डलिया, देवियाण। इसलिए यहां हम केवल इन तीन ग्रन्थों का ही विस्तार से परिचय दे रहे हैं।

हरिरस—ईसरदासजी द्वारा रचित यह ग्रथ कई स्थानो से प्रकाशित है। इसमें कुल ३६० छन्द हैं। जैसा कि ऊपर हम स्पष्ट कर आये है, हरिरस भक्ति का काव्य है किन्तु लेखक ने अपनी ओर से इसके छन्दो को विषय क्रम में नही रखा है। इस छन्द की जो विविध हस्त लिखित प्रतियां मिलती हैं उनमें विषयो और छन्दो का क्रम अलग-अलग है। कही पर उपासना और कर्मयोग से सबधित छन्द हैं तो इन्ही के बीच में कही पर ज्ञान और अवतारो के महत्व के छन्द आ गये हैं। इस प्रकार पूरा ग्रथ भक्ति विषय का होते हुये भी क्रमहीन है। इसलिये इसे पूर्णरूप से मुक्तक काव्य ही कहा गया है। कुछ हस्तलिखित प्रतियो के सूक्ष्म अध्ययन से विदित होता है कि लेखक ने ग्रथ को विषय-क्रम मे रखने की चेष्टा तो की है। लेकिन उसे पूर्ण सफलता नही मिली। सभव है ईसरदासजी ने ऐसा जानबूझ कर किया हो। वे जानते थे कि मेरे इस ग्रन्थ के पाठक सरल भक्तजन ही अधिक होंगे। प्रत्येक छन्द के प्रारम्भ में उन्होने सरल राजस्थानी भाषा मे विषय लिख दिया है। इस प्रकार

सम्पूर्ण ग्रन्थ सर्ग, अध्याय अथवा कांडो में विभाजित न होकर नाना प्रकार के भक्ति-विषयों में विभाजित है।

हरिरस मे सगुण और निर्गुण दोनो भक्ति-रूपो के दर्शन होते हैं। राम, कृष्ण और अन्य अवतार सभी की महिमा का गान लेखक ने इस ग्रन्थ मे किया है। सृष्टि की उत्पत्ति, जीवात्मा का धर्म, नाम स्मरण, आत्म साक्षात्कार आदि विषयो पर बहुत ही सरल और सुगम शैली मे प्रकाश डाला गया है।

इस ग्रथ मे कुल पाच प्रकार के छन्दो का प्रयोग हुआ है। वे इस प्रकार हैं—दोहा, गाथा, त्रिभखरी, मोतीदाम और छप्पय। इनमे दोहा और मोतीदाम छन्द का प्रयोग अधिक हुआ है।

सम्पूर्ण ग्रन्थ सरल मारवाडी भाषा मे है। किन्तु कुछ स्थलो पर अपभ्रश और प्राकृत का प्रभाव भी दिखाई देता है। यों ईसरदासजी डिंगल के प्रकाण्ड पडित थे। संस्कृत व अरबी-फारसी का भी उन्हें ज्ञान था किन्तु हरिरस को उन्होंने जान-बूझ कर अत्यन्त सरल भाषा मे लिखा था। यह ग्रथ मूलत भक्तजनो के के लिये है, पण्डितो और काव्य-शास्त्रियो के लिये नही।

हाला झाला रा कुण्डलिया इस ग्रथ के लेखक को लेकर राजस्थानी के विद्वानों मे, प्रारम्भ मे कुछ भ्रम था। कुछ विद्वानो की मान्यता थी कि इसके लेखक ईसरदासजी के काका आशानन्द हैं। इस मान्यता का कारण शायद यह रहा कि 'ईसरदासजी के शेष सभी ग्रथ भक्ति के हैं। वे वीररस की इतनी उत्कृष्ट रचना कैसे कर सकते थे? और आशानन्दजी मूलत वीर रस के कवि थे। इसलिये ऐसी ओजस्वी कृति के निर्माता वे ही हो सकते हैं।' ईसरदासजी के सम्पूर्ण साहित्य और उनके जीवन और व्यक्तित्व का अध्ययन कर विद्वानो ने अब यह मान लिया है कि इस ग्रथ के वास्तविक लेखक ईसरदास ही हैं—आशानन्द नहीं।

'हाला झाला रा कुण्डलिया' वीर रस का एक मुक्तक काव्य है। इसमे कुल ५० छन्द हैं। कुछ हस्तलिखित प्रतियों में ५० से कम

और कुछ मे अधिक छद भी मिलते हैं। डॉ० मोतीलाल मेनारिया ५० छदों के पक्ष मे हैं। इस ग्रथ मे केवल कुण्डलिया छद का प्रयोग हुआ है। इस छद के आधार पर ही इस ग्रथ का नामकरण हुआ है। इस ग्रथ मे कोई विशेष कथानक नही है—वीरता और युद्ध-वर्णन ही इसका मूल विषय है। किन्तु इस ग्रथ के निर्माण की पृष्ठ-भूमि मे एक घटना अवश्य है। इससे सम्बन्धित पात्रो के नाम भी इसलिये इस कृति मे कुछ स्थानो पर आये हैं। मूल रूप से वीर-जसाजी की वीरता और उनके युद्ध-कौशल का इसमे वर्णन हुआ है।

सक्षेप में उक्त घटना इस प्रकार है। काठियावाड के दो छोटे-छोटे राजाओ मे [ध्रागधा के झाला राजा रायसिंह और ध्रोल के हाला राजा जसाजी] चौपड खेलते हुये मामूली बात को लेकर कहा सुनी हो गई। ये दोनो मामा-भाणजे थे। बात यो हुई कि चौपड के खेल के समय एक मुकुन्दभारती मठाधीश की जमात नगाडे बजाते हुये जसाजी के महल के पास से गुजर रही थी। उन्हें क्रोध आ गया कि मेरे राज्य मे मेरे अलावा किसी और के नगाडे कैसे बज सकते हैं? यह बताने पर कि साधु महात्मा की जमात है, उनका क्रोध तो शान्त हो गया। झाला राजा रायसिंह को उनका यह दर्प सहन नही हुआ। उन्होंने उसी समय कहा कि मेरी सेना आपके यहाँ आकर नगाडे बजायेगी, आप रोकिये और वे उठकर चले गये।

अपनी उक्त घोषणा के अनुसार कुछ दिनो बाद झाला राय-सिंह नगाडे बजाते हुये आये। दोनों मे भयकर युद्ध हुआ। जसाजी को वीरगति प्राप्त हुई। रायसिहजी भयकर रूप से घायल हुये। कहते हैं, युद्ध प्रारम्भ होने से पूर्व ये दोनो वीर ईसरदासजी के पास आये थे और उनसे प्रार्थना की थी कि आप हमारे इस युद्ध का आँखो देखा वर्णन अपने काव्य मे करें। ईसरदासजी ने कवि धर्म को निभाया और इन दोनो वीरो को उन्होंने इतिहास में अमर कर दिया। इस घटना की ऐतिहासिक प्रामाणिकता के सम्बन्ध में कुछ नहीं कहा जा सकता। गुजरात और काठियावाड के इतिहास ग्रथों

से यह बात तो सिद्ध होती है कि इन दोनो राजाओ के बीच युद्ध तो हुआ था।

इस ग्रंथ को कुछ लोग 'सूर सतसई' भी कहते है किन्तु किसी भी प्राचीन हस्तलिखित प्रति मे यह नाम नही मिलता। फिर सतसई से अर्थ उस ग्रंथ से लिया जाता है जिसमे ७०० छन्द हो। इसमें तो केवल ५० छन्द ही हैं।

काव्य-कला की दृष्टि से यह ग्रथ न केवल ईसरदासजी की सर्वोत्कृष्ट कृति है अपितु डिंगल काव्य मे भी इसका स्थान बहुत ही गौरवपूर्ण है। डिंगल के प्रसिद्ध अलकार 'वेंण सगाई' की छटा इस छोटी सी कृति मे बहुत ही चतुरता के साथ दिखाई गई है। रूपक, व्याज स्तुति उपमा और उत्प्रेक्षाओ के उदाहरण भी इस ग्रंथ मे सर्वत्र मिलते है। वीर रस का उच्चतम परिपाक इस कृति की अपनी एकान्त विशेषता है। एक-एक शब्द मे वीर भाव की व्यजना हुई है।

यह ग्रंथ ठेठ डिंगल मे लिखा हुआ है। प्राकृत, अपभ्रंश के अतिरिक्त डिंगल के कुछ ऐसे शब्दो का प्रयोग भी इसमे मिलता है जो अधिक प्रचलित नही रहे। यही कारण है कि यह ग्रथ कुछ कठिन हो गया है। पर इस ग्रंथ की भाषा से ईसरदासजी के भाषा-पाडित्य का पूर्ण परिचय मिलता है। शब्द की आत्मा को वे पहिचानते थे इसीलिये शब्दो का इतना समर्थ और सार्थक प्रयोग उन्होने किया है कि काव्य के वर्ण्य-विषय अत्यन्त सजीव हो गये है। तलवारो के टकराने, मुण्डो के कटने, सुभटो के भिडने आदि की ध्वनियो को शब्दो के माध्यम से मूर्त किया गया है। यह ईसरदासजी की कला और भाषा-प्रयोग की विशेषतायें हैं।

हरिरस की भाँति ईसरदासजी की यह काव्य-कृति भी बहुत ही लोकप्रिय है। राजस्थानी काव्य-प्रेमियो, चारणो और क्षत्रियोचित भाव वाले पुरुषो मे शायद ही ऐसा कोई मिले जिसे इस ग्रंथ के कुछ छन्द कठस्थ न हो।

(३) देवियाण : ईसरदासजी की तीसरी प्रसिद्ध कृति है देवियाण। यह ग्रंथ सौराष्ट्र के प्रसिद्ध गुजराती और राजस्थानी साहित्य के लेखक और विद्वान् राज कवि शंकरदान जेठी भाई देथा के द्वारा सम्पादित होकर वहीं से (सौराष्ट्र, लीमड़ी) प्रकाशित हुआ है। आद्य शक्ति माँ जगदम्बा की सर्वोत्तम शक्ति का स्तुति गान इस ग्रंथ में हुआ है। यह अडल और भुजंगी छन्द में रचित है। इसमें कुल ८८ छन्द हैं। अन्त में तीन छप्पय हैं।

इस ग्रंथ की रचना के सम्बन्ध में एक जन-श्रुति प्रचलित है। अपने 'हरिरस' ग्रंथ को पूर्ण कर ईसरदासजी ने द्वारिका जाकर श्री कृष्ण और रुकमणी की मूर्तियों के समक्ष उसे पढ कर सुनाया। ग्रंथ-पाठ पूर्ण होने पर, ऐसा कहते हैं कि रुकमणीजी की मूर्ति ने मुखरित होकर कहा— "ईसरदास तुमने देवी पुत्र चारण होकर पिता के प्रेम में माता को भुला दिया।" ईसरदास ने अपनी भूल स्वीकार की और गांव लौट कर प्रस्तुत ग्रंथ 'देवियाण' की रचना की। पुनः द्वारिका लौट कर रुकमणीजी की मूर्ति को यह ग्रंथ सुनाया। कहते हैं श्री नारायणजी की वह मूर्ति पुन: मुखरित हुई और बोली— "ईसरदास यह देवियाण 'दुर्गा सप्त शती' के समान भाविक भक्तों को फलदाता सिद्ध होगी।" यही कारण है कि देवी भक्तों में 'देवियाण' का आज भी अत्यधिक प्रचार है।

यह सम्पूर्ण ग्रंथ शुद्ध डिंगल में है। भक्ति के साथ काव्य की दृष्टि से भी यह ग्रंथ हृदयस्पर्शी है।

ईसरदासजी का डिंगल साहित्य में स्थान—ईसरदासजी राजस्थानी साहित्य के निर्विवाद रूप से एक कीर्तिमान स्तम्भ हैं। एक भक्त और सन्त कवि के रूप में इन्होंने राजस्थानी को भक्ति साहित्य की जो निधि दी है, वह तो अमूल्य है ही किन्तु क्षत्रियोचित वीर भाव के प्रेमी और रण दृश्यों के कुशल चितेरे के रूप में इन्होंने वीर रस की जो रचनायें दी हैं, वे इन्हें राजस्थानी साहित्य में और भी गौरवपूर्ण स्थान दिलाने में सफल हुई हैं। जहाँ इनका 'हरिरस' भक्तजनों का कण्ठहार है, वहीं वीररस से ओत-प्रोत 'हालाँ झालाँ' के छन्द वीरों के प्रेरणास्रोत हैं। इनकी काव्य कला,

भाषा, काव्य के विषय–सभी को पूरा आदर मिला है। जहाँ इन्हे काव्य-पडितो से प्रशसा मिली है वहाँ सरल हृदय समाज से भी भक्ति और श्रद्धा प्राप्त हुई है। दर्शन और भक्ति के गहन विषय को इन्होने बहुत ही सरल भाषा मे अभिव्यक्ति दी है। यही कारण है कि इनका 'हरिरस' राजस्थान के जन समाज मे आज भी राम-चरित मानस की भाँति प्रचलित है।

ईसरदासजी एक और कारण से भी महत्वपूर्ण कवि हैं। ये जामनगर रावल के यहाँ आश्रित रहे किन्तु अन्य आश्रित चारण कवियो की तरह इन्होने कभी अपने आश्रयदाता का अतिशयोक्ति-पूर्ण प्रशस्तिगान नही किया। ये सच्चे कवि और भक्त थे। अपनी पवित्र कवि-वाणी का इन्होने वीर भाव के उद्‌बोधन और मानव के आत्म कल्याणकारी काव्य के निर्माण मे ही उपयोग किया।

इनकी रचनाओ के कुछ चुने हुए अश अगले पृष्ठो मे दिये जा रहे हैं।



ईसरदासजी बारहठ : कविता

हरिरस के अंश

सरसति सनेहे ह्वौ जपा, गणपति लागा पाय ।
ईसर ईस अराधवा, सदबुध करो सहाय ।।

मैं (ईसरदास) माँ सरस्वती को स्नेहपूर्वक स्मरण कर रहा हूँ, गणेशजी के चरणों की वन्दना कर रहा हूँ। ईश्वर की आराधना करने के लिये आप मुझे सद्बुद्धि दें और सहायता करें।

भगतवछळ ! मो दे भगति, भाज परा सह भ्रम्म ।
मूझ तणा क्रम मेटवा, कथा तुहाळा क्रम्म ।।

मेरे सम्पूर्ण भ्रमों का निवारण कर, हे भक्त वत्सल भगवान् ! मुझे अपनी भक्ति दे। मैं अपने दुष्कर्मों को मिटाने के लिये तुम्हारी चरित्र-कथा कह रहा हूँ।

पीठ-धरण धर पाटली, हर-उत लेखणहार ।
तउ तोरा चरिता तणो, परम न लब्भै पार ।।

हे परम् परमात्मा ! यदि इस धरती को पाटी बना कर स्वयं गणेशजी आपके चरित्र लिखने बैठे तो भी आपके अनन्त चरित्रों का पार नहीं पा सकते।

देव ! किसी उपमा दिया, तैं सरज्या सह कोय ।
तो सारीखो तु हिज है, अवर न दूजो होय ।।

हे परमात्मा ! तुम्हे ससार की किस वस्तु की उपमा दूँ। ससार की सभी वस्तुयें आप द्वारा ही निर्मित हैं और वे सब नाशवान हैं। अत आपके समान यहाँ कोई दूसरा हो ही नही सकता। आपके समान तो केवल आप ही हैं।

आभ विछूटा माणसा, हे धर झल्लण हार।
धरणीधर ! धर छडता, असहा तू आधार॥

आकाश से विछुडने वाले (अर्थात् जन्म लेने वाले) समस्त प्राणियो को आपका ही रूप यह धरती आश्रय देती है। किन्तु इस पृथ्वी को धारण करने वाले हे परमात्मा ! जो प्राणी धरती को छोडते हैं (मृत्यु) उन्हे आपके सिवाय और कौन आश्रय दे सकता है।

नारायण ! हो तुझ नमा, इण कारण हरि ! अज्ज।
जिण दी ओ जग छडणो, तिण दी तोमूं कज्ज॥

इस ससार को छोडने के दिन के बाद तो मुझे आपसे ही काम है। इसलिये हे नारायण ! आज ही से मैं आपकी आराधना कर रहा हूँ।

दळया कई वार वडाळ दईत
इन्द्राप्रर दीधउ, सक्र अजीत
हण्या नख वार किता हिरणक्ख
भवानि र भैरव कीधो भक्ख

पाळया-प्रत वार किता प्रहलाद
सुणता सेवक आरत सादं
दिया तैं वार किता वरदान
थप्यो ध्रुव राज अवीचळ थान

आपने कितनी ही बार भागीरथ राजा का वेष धारण कर इस धरती पर पवित्र कल्लोलमयी गंगा का अवतरण किया। इससे हे देव ! कितनी ही बार मनुष्य सुख और स्वर्ग के अधिकारी बने।

नमो अरण-आंभय जोत-अखंड
नमो वय कोट वसै ब्रहमण्ड
नमो अंग आणंद रूप अतीत
नमो अवधूत अक्रम्म अजीत

आपके अन्धकारहीन अखण्ड ज्योति रूप को नमस्कार है। आपके उस विराट रूप को नमस्कार है जिसमें कोटि-कोटि ब्रह्माण्ड निवास करते हैं। हे अवधूत, अजित, अक्रिय, रूपातीत आनन्द रूप ! आपको नमस्कार है।

नमो हरि लीलाय उत्तम नांम
सोहं अवतार नमो सियाराम
दिसन्न नमो तुझ आदविभूत
को जांणव तूझ तणी करतूत

परब्रह्म के सोहं रूप अवतार श्रीराम ! आपको नमस्कार है। आपके अनेक लीलामय अवतारों के सुन्दर नामों को नमस्कार है। आपकी आदि विभूति परब्रह्म रूप को, हे विष्णु ! नमस्कार है। आपके रहस्यमय चरित्र की इन लीलाओं को कोई नहीं जानता।

बुझै कुण नाथ तोरा बोह् वंग
सकत्त न सीव सुरत्त न लंग
करंताय कालाय-वालाय क्रीत
चतुरभुज रूड़ीय मांनोह चीत

आपके इन अनेक रूपो को और कौन जान सकता है, स्वय शिव और शक्ति भी इन्हे नही जानते। इसलिये हे चतुर्भुज ! मेरी इस प्रार्थना को, यह जैसी भी है, अपने हृदय मे धारण करने की दया करें।

तुया पविन करिस दसरथ-तण
चरचवि लेप केर हरि चदण
काय निपाप करिस हो केसव
देववत करै तूझ दइता-दव

हे दशरथ नन्दन राम ! आपके चरणो मे अर्पित चन्दन को अपने समस्त शरीर मे लगा कर मैं अपनी त्वचा को पवित्र करूँगा। हे दैत्यो के दमन करने वाले केशव ! आपके चरणो मे दण्डवत कर मैं अपने शरीर को पवित्र करूँगा।

रोम-रोम तव नाम रखाविस
इम करतो प्रभु चरणौ आविस
मनसा वाचा क्रमणा माही
नरहर तो विण राखिस नाही

मैं अपने रोम-रोम मे आपके नाम को धारण करूँगा। अपने वचन, मन और कर्म मे केवल आपको ही स्थान दूँगा अन्य किसी वस्तु को नही। इस प्रकार मैं आपके चरणो मे अपने-आपको अर्पित कर दूँगा।

मनछा डाकण माहरै, राघव ! काढ रुदाह।
जिम्र वन मे केहर वसै, त्रासै ग्रगला ताह॥

जिस वन मे सिंह निवास करता है उस वन के सभी हिरण दुखी हो जाते हैं और भयभीत हो जाते हैं। हे राघव वम उसी

प्रकार आप मेरे मन में बस कर मेरे मन की वासना रूपी डाकिनी को भगा दीजिये।

दीह घणा माझल दुनी, रुळियो पेखण रूप।
माहव ! हिवै पमाड मो, सिव ताहरो सरूप ॥

आपके रूप के दर्शनो के लिये मैं अनेक दिनो तक इस ससार मे इधर-उधर भटकता रहा। किन्तु अभी तक दर्शन नही हुये। हे माधव ! अपने उस शिव स्वरूप (कल्याणकारी) के मुझे अपने हृदय मे दर्शन देने की कृपा करें।

माग्यो हो सरब दियो हो मूझ
तुहारिय गत्त मागा कन तूझ

मागा मन वाय करम्म मुरार
नारायण ! जामण अत्त निवार

हे प्रभु, मैंने जो कुछ मागा, आपने दया कर मुझे दे दिया। अब मैं हे मुरारि ! आपकी गति को प्राप्त होना चाहता हूँ। हे नारायण ! मन, वचन और कर्म से मैं यही याचना कर रहा हूँ। मेरे जन्म और मरण के बधन काट दीजिये।

[छप्पय]

कसा करव हो महल, महल गिरिमेर कहावै
कसा गाव हो गुणव, गुणव ज्या तुम्मर गावै

मेल्हा की धन माल सिरीजी चरणा आगै
कसा पखाळा पाव, पवित्र नख गगा लागै

की पुहप चढावा सिर परैं, पारिजात व्रख तुझ घरैं
राजाधिराज ! की रीझवा, कवि सकर सेवा करै ?

जिन भगवान् के रहने के लिये स्वर्णमय सुमेरु पर्वत के ऊँचे गिरि शिखर है, उनके लिये मैं कौनसा मदिर बनवाऊँ ? स्वय देवता लोग जिनके गुणो को गाते हैं, मैं उनके गुणो को क्या गाऊँ ? स्वय लक्ष्मीजी जिनके चरणो मे निवास करती है, उनके चरणो मे मैं कौनसी सम्पत्ति रखूं ? स्वय पतितपावनी गगा जिनके चरणो के उज्ज्वल नखो को छूती है उनके चरणो का मैं कैसे प्रक्षालन करूँ ? हे राजाओ के राजा ! आपके घर मे ही कल्पवृक्ष है, मैं कौनसे वृक्ष के पुष्प आपके सिर पर चढाऊँ ? आपकी सेवा स्वय शिव और ब्रह्मा कर रहे है मैं किस सेवा के द्वारा आपको प्रसन्न कर सकता हूँ ?

राखै ज्युं-त्युं रहा, जिहा निरमै त्या जावा
हुकम तणा वस हुवै, जिको सिरि गिरा जणावा

काम लोभ मद क्रोध, मोह वड सह जग माही
तूं ही मार जिवाड, परम ततर तुव पाही

ध्यान कर नजर तोसू धरै, सो निवाण जग निस्तरै
राजाधिराज ! तोरी रजा, ईसर रा सिर ऊपरै

हे परमात्मा ! आप हम प्राणियो को जिस अवस्था मे रखना चाहते है उसी मे हम रहते है। जहाँ जिस योनी मे हमे पटकते हैं, उसमे हम रहते हैं। आपके श्री मुख से जो आज्ञा होती है हम उन्ही योनियो की भाषाओ मे बोलते हैं। काम क्रोध, मद, लोभ आदि कुप्रवृत्तियाँ हमारा पीछा नही छोडती। जन्म और मृत्यु आपके ही हाथ मे है। आपका ध्यान करने वाला प्राणी इस ससार-समुद्र से पार हो जाता है। ईसरदास कहते है, हे राजाधिराज ! आप जो भी आदेश दें, मुझे स्वीकार है।

अवगण म्हारा बापजी ! बगस गरीब नवाज ।
जो कुल कपूत हवै, तो हि पिता कुळ लाज ।।

हे गरीब नवाज ! हे पिता ! मेरे दोषो को क्षमा कर दे। पुन यदि कुपुत्र भी है तो कुल-प्रतिष्ठा की रक्षा की चिन्ता पिता को ही होती है।

धारै तो साहब धणी, करै विलब न काय।
मार उपावै मेदनी, महोरत हेकण माय ॥

यदि भगवान करना चाहे तो एक क्षण मे वह प्रलय कर सृष्टि का पुन निर्माण कर दे। वह परम समर्थ है।

साई ! तूं ज वडो धणी, था मू वडो न कोय।
तू जेना सिर हत्थ दे, सो जग मे वड होय ॥

हे प्रभू आप ही बडे स्वामी हैं, आपसे बडा कोई नही है। आप जिसके सिर पर अपना करुणा हस्त रखते हैं, वह ससार मे बडा हो जाता है।

अखिल ! तु हिज कै को अवर, बहोनामी ! बुज्झव्व।
लखमीवर ! लेखा नही, समवड प्राणी सव्व ॥

हे अनेक नाम धारी अखिलेश ! मै आपसे पूछता हूँ कि इस ससार मे अपने समान आप ही है, अथवा कोई अन्य भी है। हे लक्ष्मीपति ! समस्त प्राणियो मे मुझे तो आपके समान कोई अन्य नही दिखाई देता।

नही तुव क्रम्म नही तुव नाम
नही तुव भ्रम्म नही तुव धाम
नही तुव मूळ नही तुव डाळ
नही तुव पत्र नही तुव पाळ

न कोई आपकी इच्छा है न कोई कर्म है। न आपका कोई स्थान है न धर्म है। न आपकी कोई जड है, न कोई शाखा है और न पत्र है। न कोई आपका रक्षक ही है।

प्रथी अप तेजी अनील अकास
नही तुझ सुन्न असुन्न निवास
प्रमेसर प्रांण-प्ररक्ख प्रधांन
गंरब्भ-जगत्त वेदान्त-गिनांन

पृथ्वी, अग्नि, वायु, प्रकाश, आकाश और शून्य आप इनमें कही भी नही रहते। आप तो वेदान्त के ज्ञान और प्राण-पुरुष जगत के कारण है।

नारायण नारायणा, तारण-तिरण अहीर।
हों चारण हरि गुण चवां, सागर भरियो खीर॥

हे नारायण! आप ही नरनारायण हैं। अहीर कुल में पैदा होने वाले पापियों का उद्धार करने वाले श्री कृष्ण आप ही है। मैं चारण किस प्रकार आप जैसे अनन्त शक्तिवान प्रभु के गुणों का वर्णन कर सकता हूँ। यह तो क्षीर से भरे हुये सागर की प्राप्ति के समान है। मेरा यह सौभाग्य कहाँ।

नारायण नारायणा, म्होट काटण फंद।
हों चारण हरि गुणचवां, सोनो अनै सुगंध॥

हे नारायण! हे विष्णो! आप कठिन बन्धनों को काटने वाले है। मैं आपके गुणों का वर्णन करूँ, यह तो सोने में सुगन्ध के समान है।

नारायण रो नांम तो, भूंडां ही भल वांण।
चोपडियो चंगो थियै, जहड़ो-तहड़ो खांण॥

घी के कारण जैसा-तैसा खाद्य पदार्थ भी स्वादिष्ट हो जाता है। इसी प्रकार नारायण के नाम के उच्चारण से बुरे मनुष्य भी अच्छे बन जाते हैं।

दाखै ईसरदास यूं, कटक न होणा कीध।
रांम रांम रटतां थकां, लंक बभीखण लीध॥

राम के नाम का स्मरण करने से विभीषण को बिना सेना के ही लंका का राज्य मिल गया। ईसरदास कहते हैं—'राम के नाम का प्रभाव तो देखो'।

नारायण रा नांम री, मोड़ी पड़ी पिछाण।
कई दिन बालापण गया, कई दिन गया अजांण॥

कई दिन तो बालावस्था में खो दिये, कई दिन अज्ञान में ही बीत गये। नारायण के नाम के महत्व का ज्ञान बहुत देर के बाद (केवल बुढापे मे) हुआ।

नारायण रा नांम सूं, प्राणी करलै प्रीत।
इअ घट वणियो आतमा, चत्रभुज आसी चीत॥

इस मनुष्य देह में जब तक आत्मा का निवास है, तब तक चतुर्भुज का स्मरण हो सकेगा। हे प्राणी। इसलिये तू नारायण के नाम से स्नेह करले।

वैद तणी वंसावळी, कहो कि वाचण कांम।
मिटै रोग जांमण-मरण, निगम लियंतां नांम॥

वैद्यराजजी की खुशामद करने से क्या लाभ होगा? जन्म-मरण जैसे भीषण रोग तक उस परमात्मा के नाम स्मरण से मिट जाते हैं, इसलिये हमें केवल भगवान् का ही नाम लेते रहना चाहिये।

रटै तव नाम मिटै दुग्र रोर
जरामय पाप न लागत जोर
जपै तव नाम प्रती दिन जीह
मसार तिका नही खावत सीह

आपके नाम को वार-वार रटने से नरक का दुख, बुढापा, रोग और पापो का जोर नही चलता। जो लोग रात-दिन भगवान् का नाम जाप करते हैं, उन्हे इस ससार मे काळ रूपी सिंह नही खाता।

भमतो राख हिवैं जग भावन
प्रेम-भक्ति दै त्रिभुवन पावन
क्रिसन ! राख हिवैं हू-तू करतो
धरणीधर ! मन ममता धरतो

हे कृष्ण ! अब जन्म-मरण के बन्धनो को लेकर ससार मे भटकने से मुझे बचा। त्रिलोक को पवित्र करने वाली अपनी प्रेम-भक्ति दे। हे धरणीधर ! मुझे इस ममता से जिसके कारण मैं यह सोचता रहता हूँ कि यह मेरा है, यह तेरा है, मुक्त कर।

चवता चरित तुहारा चेतन
जनम नही पुनरपि मानव जन
अकळ अजन्मा अलख अलेपम
क्रम हो छुटिस तुझ कथता क्रम

हे चेतन प्रभु ! आपके चरित्र का गान करने से प्राणी जन्म और मृत्यु के चक्र से मुक्त हो जाता है। आप अजन्मा, अलक्ष्य, अलिप्त और निर्द्वन्द्व हैं। आपके गुणो का कथन करने से मैं कर्म-बन्धनो से मुक्त हो जाऊँगा।

जळा-थळ थावर जगम जोय
किथँ हरि ! तूझ पखै नही कोय
मकोडिय कीट पतग मुणाळ
भिखग तु हीज तु हीज भुग्राळ

जल, थल, स्थावर जगम—सब मे आप व्याप्त है। कोई ऐसी वस्तु नही जिसमे आप नही दिखाई देते। कीडे-मकोडे से लेकर सूर्य और ब्रह्मा तक, भिखारी से लेकर राजा तक आपकी सत्ता विद्यमान है।

लगाड गलँ जनि अतर लाय
वहेलो थाय नही सहवाय
वसीकर सव्व तुहाळो वेस
नही तू जेथ स दाखव नेस

अब एक क्षण की भी देर मत करो। मुझे अपने हृदय से लगा कर एकात्म करलो। यह वियोग मुझे सह्य नही होता। अपना सम्पूर्ण रूपात्मक वेश हे प्रभो, अब समाप्त करदो जिससे मैं प्रत्येक स्थान पर आपको साक्षात रूप मे देखता रहूँ।

सभाणउ मोहि हुग्रउ सुख सात
भरम्म दुग्राळ छुटै जग-भ्रान्त
सधीरण सत्त-ग्रणद-सचेत
गोविंद ! गहीर तु ग्याव-रुपेत

ससार की सम्पूर्ण भ्रातियाँ मिटा कर हे गोविन्द ! मैं आपकी अखण्ड सुख-शान्ति को प्राप्त हो गया हूँ। हे सच्चिदानन्द ! आपके गभीर ज्ञान-स्वरूप को प्राप्त कर मैं उसमे स्थिर हो गया हूँ।

आप रूप हूता अनत, अप्पा तैं अवतार।
पाप धरम दुइ पीडवा, लीधा जीवा धार॥

हे प्रभु ! ये अनन्त जीव आप द्वारा निर्मित हुये और आपके रूप के ही थे। किन्तु उन्हें दुख देने के लिये आपने पाप और धर्म का यह जंजाल उनके पीछे क्यों लगा दिया।

विण अपराध विटवतो, रे हो त्रिभुवन राय।
कर कूडा सासत्र कथन, कर कूडा क्रम काय॥

हे त्रिलोकीनाथ ! इस जीवात्मा को आप बिना किसी अपराध के ही इधर-उधर क्यों भटकाते हैं ? या तो आप शास्त्रों के कथन को असत्य सिद्ध कीजिये। शास्त्र कहते है कि एक से अनेक होने की इच्छा के द्वारा प्राणी अनेक योनियाँ धारण करता है। या फिर कर्मों की प्रधानता को अमान्य कीजिये। कर्म-सिद्धान्त के द्वारा मनुष्य अपने किये हुये कर्मों के अनुसार ही जन्म ग्रहण करता है।

कीधा कुण पुगो किसन, वडा सामुहो वाद।
आद न को तो मो अनत, आतम, करम न आद॥

हे कृष्ण ! बड़े मनुष्यों के समक्ष विवाद करने से क्या लाभ ? हे परमात्मा ! न तो आपके आदि अन्त का पता लगता है और न कर्मों की गहन गति का ज्ञान हो सकता है।

हरि-हरि करता हरख कर, अरे जीव अणबूझ।
पारस लाधो ओ प्रकट, तन मानव मे तूझ॥

हे भोले प्राणी ! भगवान् का नाम स्मरण कर और सुखी हो। इस मनुष्य जीवन मे हरि नाम का प्रत्यक्ष पारस तुझे प्राप्त हुआ है।

हंस मांहळा मूढ़ रे! कर हर-सर विसराम।
मर मर धर पर फर मती, उर धर गिरधर नांम॥

हे मूर्ख हंस (जीवात्मा)! तू बार-बार जन्म लेकर इस संसार में मत भटक। अपने हृदय मे श्री कृष्ण का नाम धारण कर और उस परब्रह्म सरोवर में जाकर रह।

प्रभू भजंतों प्राणिया! कीजै ढील न काय।
भर बाथां अथ काढियें, मंदर बलता माय॥

घर में जब आग लगजाती है और दौड-दौड कर, बटोर-बटोर कर जिस प्रकार उस घर से धन निकाला जाता है। उसी प्रकार हे प्राणी! भगवान् का स्मरण करने में तनिक भी विलम्ब मत कर।

रहै विलूंबो रांम रस, अनेरस गणँ अलप्प।
एह महा-ध्रम आतमा, ए तीरथ ए तप्प॥

भगवान् राम के नाम का रस पीते हुये और अन्य सांसारिक रसों को गौण समझते हुये जो भगवान् के प्रेम में लीन रहता है उसके लिये यही महा-धर्म, तप और तीर्थ है।

रुंड़ों करही रांमजी, सह बातां श्रीरंग।
भगतां पर भूधर धणी, चाढण नीर सुचंग॥

भगवान् सभी विषयों को पूरा करने वाले हैं, वे आनन्द देने वाले हैं। हे प्राणी! तू विश्वास रख। अपने भक्तों की प्रतिष्ठा बढाने में वे सदैव तत्पर रहते हैं।

रांम भणंतां रे रिदा! कंहं गुणं केतां होय।
मांनै ठाकर जग नमै, प्रसण न पीड़ै कोय॥

हे मन ! भगवान राम के नाम के उच्चारण मे देख कितने लाभ होते है। उसे सब लोग बडा मानते है, ससार उसके सामने नतमस्तक होता है। और शत्रु उसका नाश नही कर सकते।

राम विसारी क्यू रह्यो, रे मूरख मद अध।
जिअ दी राम न सभरै, ऊदी अधा धु ध ॥

हे मूर्ख ! वासनाओ और वैभव के नशे मे अधे होकर तू राम को भुला कर किस प्रकार जी रहा है। जिस दिन तू राम का स्मरण नही करेगा, उस दिन सचमुच तेरे जीवन मे अन्धकार छा जायेगा।

हित सू हरि भज रे हिया ! आळस म कर अजाण।
जिअ पाणी सू पिंड रच्यो, पवन विलू धो प्राण ॥

हे मन ! जिस प्रभु ने पानी की बूद से शरीर की रचना की और पवन के सचार से उसे प्राण युक्त किया उसे हृदय से भज। हे अज्ञानी ! इसमे आलस्य मत कर।

मन पाखै ही महमहण, चविये जिहा चरित्त।
आतम पीछा अवस ही, अमर करै अमरत्त ॥

मन न रहते हुये भी उस परब्रह्म (महमहण) के चरित्र का गान करना चाहिये। अमृत को यदि विना मन भी पिया जाय तो भी वह अमर कर देता है।

नारायण भज रे नरा, अतरजामी एक।
साई जो सबळो हुवै, अवळा हुवो अनेक ॥

हे मनुष्य ! तू एक अतर्यामी का भजन कर। यदि वह स्वामी अनुकूल है तो चाहे अनेक लोग हमारे शत्रु हो जाय वे कुछ नही विगाड सकते।

साच '' पियारी ' सांईयां, सांई साच सहाय ।
साचां अगन नि ‑सा ळगै, साचां, स्रप न डसाय ॥

सत्यवादी को भगवान भी प्यार करते हैं, वे उसकी सदैव सहायता करते हैं। सत्यवादी को अग्नि भी नही जला सकती, उसे सर्प (काल) भी नही डस सकता।

सरब रसायण मे सरस, हरिरस समो न कोय ।
हेक घड़ी । घट में रहै, सह घट‑कंचन होय ॥

सभी रसायनो [औषधियो] मे हरिरस की रसायन सर्वश्रेष्ठ है। यह रसायन यदि एक घडी के लिए भी शरीर में रह जाय तो यह सम्पूर्ण शरीर को सोना कर दे।

तनक भनक हरिरस तणी, कंठ प्राण मुणि कांन ।
महा पाप सह मोचही, आवै जनम न आन ॥

मृत्यु के समय यदि हरिरस की तनिक ध्वनि भी कानो में पड जाय तो वह प्राणी महापापों से मुक्त हो जाता है और उसे फिर जन्म नही लेना पड़ता।

'हालां झालां रा कुंडलिया' के अंश

धीरा धीरा ठाकुरा, गुम्मर कियां म जाह ।
महँगा देसी झूंपडा, जै घरि होसी नाह ॥
नाह महँगा दियण, झूंपडा त्रिभै नर ।
जावसी कड़तळा, केमि जरसी जहर ॥
रुक‑हथ पेखिसी, हाथ जसराज रा ।
टिवंतां पाव धीरा, दियौ ठाकुरा ॥

[प्रसग—झाला रार्यासह और हाला जसाजी के बीच किसी कारण [कवि के परिचय मे उल्लेख कर चुके हैं] से युद्ध हुआ। जब रार्यासह आक्रमण के लिये आये तब जसाजी की रानी ने उन्हे सम्बोधन कर जो बात कही इस छप्पय मे उसी का उल्लेख हुआ है।]

हे ठाकुर! इतने गर्व से मत चलो, धीरे-धीरे ही चलना ठीक है। यदि मेरे निडर पति घर होगे तो वे अपने झोपडे बहुत ही महगे मूल्य पर देंगे [अर्थात् शायद तुम्हें प्राण त्यागना पडे] हे झाला! तुम वहां जाकर जहर को कैसे पचा पाओगे। जसराज के हाथो मे तुम तलवार देखोगे। हे ठाकुर! अपने पावो को बहुत धीरे-धीरे सोच समझकर आगे बढाओ।

उठि अचूका बोलणा, नारि पयपै नाह
घोडा पाखर धमधमी, सीधुराग हुवाह
हुवौ अति सीधवा, राग वागी हका
थाट आया पिसण, घाट लागै थका
अखाडा जीति खग, अरि घडा खोलणा।
ऊठि हरधवळ सुत, अचूका अचूका बोलणा॥

वीर जसाजी की पत्नी अपने पति से कहती है—हे निर्भीकता से बोलने वाले वीर! उठ। सिन्धू-राग गाया जा रहा है, घाडो की पाखरी मे गर्मी आ गई है। वीर हुकार कर रहे है। शत्रु सेना घात लगाये आ गई है। हे अखाडो को जीतने वाले, अपनी तलवार से शत्रु सेना का विनाश करने वाले, निर्भीकता से बोलने वाले, हरधवल के पुत्र! उठो।

सादूळो आपा समौ, वियौ न कोई गिणत।
हाक विडाणी किम सहै, घण गाजियै मरंत॥

मरै घरग गाजियै, जिको सादूळ महि
सत्रा चा ढोल सिर, सकै किम जसौ सहि
वयरग घरग साभलै, रहै किम वीसमौ
सुपह सादूळ करिग, गिरणै आपा समौ

जसाजी की पत्नी पति से कह रही है—सिंह अपने समक्ष किसी अन्य को ताकतवर नही मानता। वह दूसरो की हुकार को कैसे सह सकता है। वह तो बादलो की गर्जना सुन कर ही मरने लगता है। ऐसा सिंह जो बादलो की गर्जना से ही मरने लगता है, इस पृथ्वी पर शत्रु सेना के नगाडों को कैसे सह सकता है। वह प्रचण्ड वीर बादलो की गर्ज ा को सुन कर चुप-चाप कैसे रह सकता है। राजा शार्दूल अपने समक्ष किसी अन्य को ताकतवर कैसे मान सकता है।

केहरि केस भभगमरिग, सरणाई सुहडाह।
सती पयोहर क्रपरग धन, पडसी हाथ भुवाह ॥
मूवाहिज पडैसी, हाथ भभग-मरिग।
गहड सरणाइया, ताहरै गैड सरिग ॥
काळ ऊभो जसो, कसकै नेडा करी।
कुरिग सती पयोहर, मूछ लै केहरी ॥

सिंह के केश, सर्प की मणि, कजूस का धन और वीरो की शरण मे आई हुई सती नारी के स्तन मरने पर ही किसी को मिल सकते हैं। हे वाराह! (रायसिंह) सर्प की मणि और वीरो के आश्रय मे पलने वाले लोग उनके जीवित रहते तुम्हे नही मिल सकते (अर्थात् वे डट कर तुम्हारा सामना करेंगे। देखो जसराज काल बना हुआ खडा है, कौन उसके निकट जा सकता है? सती के स्तन और सिंह की मूछो मे कौन हाथ डाल सकता है?

थोडा बोलौ घरण महो, नहचै, जो नेठाह ।
जो परवाडा आगलो, मित्र करीजै नाह ।।
नाह इसडा, नरा, वात विगडै नही ।
घरणा मभ घातिया, भार भालै घरणो ।
वहुत अवगुरण किया, थोडहो बोलगो ।।

हे पति ! यह ठीक लक्षरण है कि जो अधिक सहन शक्ति वाले होते है वे कम बोलते हैं । युद्ध मे ऐसे अग्रणी पुरुष को अपना मित्र बना लेना चाहिये । ऐसे व्यक्तियो से कभी बात नहीं बिगडती । सोने की कसौटी पर वे खरे उतरते हैं । ऐसे लोग बहत से शत्रुओ के बीच मे भी भारी बोझ उठाते हैं । इसलिये अधिक बोलना अवगुरण है थोडा ही बोलना चाहिये ।

मातवळा घूमै नही, नह घायल वरडाय ।
वाळि सखी उद्रगडो, भड बापडा कहाय ।।
बाळि उद्रगडौ, बसै भड बापडा ।
घाव अग सहै नह, विभाडै अरि घडा ।।
घरणा जसवत रा, जोध विहमै घरणा ।
माडिसी सही, मतिवाळा वेढीमरणा ।।

जसराज की वीरागना अपनी एक सखी से कहती है—हे सखी ! जिस गाँव मे मतवाले वीर घूमते नही घायल वीर, घावो की पीडा से वेमुध होकर बडबडाते नही और जहाँ वीर वेचारे कहलाते है उस गाव को आग लगा दे । सचमुच उस गाँव को आग लगा दे जहाँ वीर दीन बन कर रहते है न वे शत्रु सैन्य को नष्ट करते हैं और न अपने शरीर पर घाव सह पाते हैं । देखो जसराज हाला के वीर युद्ध के उत्साह से उमगित हो रहे है । ये प्रचण्ड, मतवाले वीर अवश्य युद्ध करेगे ।

साईं एहा भीचडा, मोलि महूगै वासि ।
ज्या आछन्ना दूरि भौ, दूरि थका भौ पासि ॥
रहै विमि पासि भौ, राखियाँ रावता ।
स्वामि रै कामि हणवत, जिमा सावता ॥
खरी गुर वासिया, मोलि महूँगा खरा ।
अरि घडा भाजिसी, भीच जसवत रा ॥

हे माई ! बहुत महगे मूल्य चुकाने पर ही ऐसे वीर मिल पाते हैं जिनके निकट रहने पर भय दूर रहता है और दूर रहने पर भय पास रहता है (अथात इन वीरो के निकट रहने से शत्रु के आक्रमण का तनिक भी भय नही रहता, इनके दूर रहने पर यह भय सदैव बना रहता है। हनुमान जैसे शूरवीर को स्वामी हितार्थ पास रखने से फिर भय कैसे रह सकता है ? बहुत ही महगा और खरा मूल्य चुका कर इन महावीर और वडे क्षत्रियो को पास बसाया है। हाला जसराज के ये वीर शत्रु सेना को नष्ट करेगे।

मैं परणती परखियौ, सूरति पाक्र सनाह ।
धडि लडिसी गुडिसी गयद, नीठि पडेसी नाह ॥
नाह नीठि पडिसि, खेत भाभी निवड ।
गयद पडिसी गहर, करड घड भेड गहड ॥
बिढती जसौ, बिसकन्या । बाखाणियौ ।
परणती वक्थ चौ, मुरड पहचाणियौ ॥

हाला राजा जसाजी की पत्नी अपनी एक सखी से कह रही है। विवाह के समय जब मेरे पति कवच पहन कर आये और जब मैंने उनकी यह सुन्दर मूर्ति देखी तभी मैंने जान लिया कि युद्ध मे मेरे यह पति कठिनाई से ही हताहत होकर गिरेंगे। सिर

कट जाने के पश्चात् इनको घड लडती रहेगी और हाथियो को गिरायेगी। युद्ध-भूमि में मेरे यह पति कठिनाई से ही गिरेंगे। वडे-वडे हाथी गिरेंगे और विशाल सेना के प्रचण्ड वीर धराशायी होगे। रायसिंह की सेना-रूपी विष-कामिनी ने भी जसाजी की इस रण-युगलता और वीरता का गौरव-गान किया। जसाजी की विवाहिता कहती है कि —'मैंने तो अपने पति का यह गौरव-भाव पहले ही पहचान लिया था।'

फिरि फिरि झटका जँ सहै, हाका बाजंताह।
त्यां घरि हंदी बदड़ी, धरणी कापुरसांह॥
कापुरसां धरणी, करतार रख्यं करै।
मरै नहं पिसण, खग निवळ आपै मरे॥
अभग जसवंत जुध, काम कजि आहुरी।
फिरि अफिरि फौज करि, मुयण झटका फिरि॥

जो मनुष्य युद्ध-भूमि मे वीरो की हुकार के समय, घूम-घूम कर शस्त्रो के प्रहार झेलता है, उसके यहाँ कायर पुरुषो की स्त्रियाँ दासी बन कर रहती हैं। कायरो की स्त्रियों की रक्षा भगवान् ही करते है। वह कायर नही कर पाता। वह कमजोर स्वय ही मरता है। उसकी तलवार से एक भी शत्रु नही मर पाता। निर्भय जसाजी युद्ध के लिये आगे वढे है। इस वीर ने देखो, शत्रु की अजेय सेना को वापिस लौटा दिया है।

हिरणा लांबी सींगडी, भाजण तणौ सभाव।
सूरां छोटी दांतळी, दै घण थट्टा घाव॥
घाव घण थटा अत, पिसण दळ घालणौ।
पाच मैं पापरचा, हेकलौ पालणौ॥
राण जसवंत मो, राखिया विरणिया।
हाक वागी तठै, कूदि गा हिरणिया॥

- यद्यपि हरिणों के सींग बहुत लम्बे होते है किन्तु उनका स्वभाव भागने का होता है (शत्रु को देखते ही वे भाग जाते है) सुअरों के दांत बहुत छोटे होते है पर वे भागते नही और शत्रु सेना को घायल कर देते हैं। वे शत्रु सेना का विनाश कर देते हैं। हाला जसाजी सेना के दल पर आक्रमण करने वाले हैं। वे अकेले पांच सौ घुडसवारों को रोकते हैं। सुअर के स्वभाव वाले अनेक वीर उसने अपने यहां रखे हैं क्योंकि हरिण तो हुकार सुनते ही कूद कर भाग जाते है।

गैदंतो पाडा खुरो, आरण अचळ अघट्ट।
भूंडण जणँ सु भू भलौ, थोभै अरियां थट्ट ॥
थाट मैं वाट विच, पिसण दळ थर हरै।
घोड़ला हैजमा, कड़तळां धरहरै ॥
सवळ-वाराह हालौ, लड़ण अंकडौ।
गोसियल राण, जसवंत गैदंतडो ॥

भैसे के समान खुर वाले, युद्ध में अविचल और विकट बने रहने वाले अच्छे शूकर को शूकरी पृथ्वी पर जन्म देती है और वही शत्रु सेना को आगे बढने से रोकता है। रास्ते में, सेना के बीच खडे शत्रु उसे देखकर ही थर्राते हैं। जसाजी लडने में बांका और गुस्सैल वाराह की भांति है। उसके सामने भालो की अश्वसेना कांपने लगती है।

घुडला रुधिर झिकोलिया ढीला हुआ सनाह।
रावतिया मुख झांखणां, सहीक मिलियौ नाह ॥
नाह मिलियौ सही, विरंग रंग नीसरै।
क्रमंता प्रथी सिर, जेज नहँ को करै ॥
रीसियै जसै भड, रिमां घड रोलियां।
भूडि अस असमरां, रुधिर-झकवोलियां ॥

वीरांगना युद्ध मे पराजित होकर भाग कर आने वाले सैनिकों से कह रही है। हे वीरो! तुम्हारे घोडे खून से लथपथ हैं, तुम्हारे लोह-कवच ढीले हो रहे है और तुम्हारे मुखो पर उदासी छाई है। सचमुच ही मेरे वीर पति से आप लोगो का युद्ध है— आपके चेहरो का रग फीका हो गया है। भागने के लिये उतावले हो रहे हो। क्रुद्ध होकर वीर जसाजी ने शत्रु-सेना मे भगदड मचा दी है। उन्होने अपनी तलवार के प्रहारो से घोडो को रक्त से लथपथ कर दिया है।

ग्रीभरिणयाँ रतनालियाँ, सिर बैठी सुहडांह।
चाँच न वावै डरपतीं, करडी निजर भडाहँ॥
भडाँ करडी निजर, ग्रीभरणी भालियौ।
अरि घडा विढता, भलौ अहवालियौ॥
खलकियाँ श्रोरण ताय, बोह घट-खालियाँ।
रिरण भडाँ सीस यूँ, बैठि रतनाळिया॥

वीरो के सिरो पर बठी हुई रक्तवर्ण वाली गिद्धनियाँ डर के कारण अपनी चोच नही चला रही है क्योकि उन बहादुरो की नजरें अब भी कठोर है—वे उनसे भयभीत हैं। वीरो की कठोर नजर को इन गिद्धनियो ने देखा और शत्रु सेना से लडते हुये इन वीरो की (अपने पखो द्वारा धूप से बचा कर) रक्षा की। वीरो के शरीर रूपी परनालो से बहुत रक्त बहने लगा। वे रक्तवर्ण गिद्धनियाँ इस प्रकार वीरो के सिरो पर बैठी।

हूँ वलिहारी साथियाँ, भाजै नहँ गइयाह।
छीरणा मोती हार जिमि, पासै ही पडियाह॥
पडै रिरण पाखती, छीरणवैं हार परि।
आवरत फेरि सघारि, भूँभारि अरि॥
हाथलै मेरवी, वडतळाँ हाथियाँ।
सहै भुम्भा थया बळि, जसा'रा साथियाँ॥

कवि ईसरदास कह रहे है- मैं वीर जसाजी के उन साथियों पर वलि-वलि जाता हूँ जो टूटे हुये मुक्ताहार के मोतियों की भाँति रणभूमि में विखर गये—पराजित होकर भागे नहीं। युद्धभूमि में शत्रु सेना के व्यूह को तोडकर और शत्रु सैनिको को मारकर तथा उन्हें भागने के लिये विवश कर उनके (जसाजी) यह साथी रणभूमि में मुक्ताहार के मोतियो की भाँति उनके आसपास ही विखर गये। भालों के हाथियो को इन्होंने अपने हस्तप्रहार से नीचे गिरा दिया और स्वय वहीं जूझ गये। मैं जसाजी के इन साथियों पर न्यौछावर हूँ।

मरदां मरणौ हक्क है, ऊबरसी गल्लाह।
सा पुरसा रा जीवणा, थोड़ा ही भल्लांह॥
भलां थोड जीवियाँ, नाम राखै भवां।
खेल ऊभारघै भागलां, सिर खवा॥
फळ जडै जोय चंद, जस नामौ करै।
मरद सांया जिकै, आय अवसर भरै॥

हे वीरो!! युद्धभूमि में जाकर मरना उचित है। इससे वीरगाथायें बनी रहेंगी। सत्पुरषों की आयु थोडी ही अच्छी है। इस प्रकार थोडे जीने से ससार मे नाम अमर हो जाता है। खेल-खेल में ही ये सत्पुरुप कायरों के कन्धों और सिर पर तलवार चला देते हैं। देखो, युद्धमें जाकर वे चन्द्रमा की भाँति अपना नाम अमर करते हैं। अवसर आने पर प्राण दे देने वाले पुरुष ही सच्चे वीर पुरुष हैं।

श्री देवियाण के अंश

सुभगा शिवा जया श्री अंवा,
परिया परंपार पालंवा;
पिशाचणि शाकणि प्रतिवंवा,
अथ आराधिजे अवलंवा।

तू ही गायत्री है, तू ही पार्वती है, तू ही लक्ष्मी है, तू ही जन्मदात्री मा है। तुम्हारे अनन्त रूपों का कोई पार पा नही सकता। पिशाचिनी, शाकिनी आदि तुम्हारे ही प्रतिबिम्ब हैं। हे देवी! मैं सर्व प्रथम तुम्हे नमस्कार कर रक्षा की याचना करता हूँ।

देवी कालिका मा नमो भद्रकाली,
देवी दूरगा लाघव चारिताली,
देवी दानवा काळ सुरपाळ देवी,
देवी साधक चारण सिध सेवी।

प्रलयकाल मे सम्पूर्ण सृष्टि का ग्रास करने वाली हे कालिका देवी! भक्तो का कल्याण करने वाली हे देवी भद्रकाली! हे योगरूप, कठिन साधनाओ द्वारा प्राप्त होने वाली, नाना प्रकार के चरित्र धारण करने वाली देवी दुर्गा! हे दैत्यो की कालरूप और देवताओ की रक्षारूप देवी! हे सिद्ध, साधक और चारणो द्वारा पूजी जाने वाली देवी! तुम्हे नमस्कार है।

देवी मालणी जोगणी मत्त मेधा,
देवी बेघरणी सूर असुरा उवेधा,
देवी कामही लोचना हाम कामा,
देवी वासनी मेर माहेश वामा।

मालिनी, योगिनी, उन्मत्त बुद्धि वाली कामदेव के समान नेत्रो वाली हे कामकला! मेरुपर्वत पर शिव के वामाग मे विराजमान हे शिवा! देवताओ और राक्षसो मे शत्रुता और मित्रता कराने वाली हे अनेकरूपा देवी! तुम्हे मेरा नमस्कार है।

देवी हारणीपाप श्री हरि रूपा,
देवी पावनी पतीता तीर्थ भूपा,

देवी पुन्यरूपँ देवी प्रम्मरूप,
देव क्रम्मरूप देवी ध्रम्मरूप ।

हे देवी, तुम पापो का नाश करने वाली गगा हो। पतितो का उद्धार करने वाली प्रयागतीर्थ हो। हे देवी ! तुम पुण्यरूप हो, ईश्वर रूप हो, धर्मरूप हो।

देवी गाजता दैंत ता वश गमिया,
देवी नवे खड त्रिभुवन तूझ नमिया,
देवी वन्न मे समाधी सुरथ अन्नी,
देवी पूजले आशपुर्णा प्रसन्नी।

हे देवी ! जो दैत्य अभिमान से गरजते थे, तुमने उनका वश ही नष्ट कर दिया। तुम्हारे इस पराक्रम के कारण तीनो लोक और नवखण्ड तुम्हारे चरणो मे झुके हुये है। हे देवी ! तुमने सुरथ नाम के राज्यविहीन राजा और समाधि नामक दरिद्र और भूखे वैश्य की आशाय पूर्ण की।

देवी मगळा रूप तू ज्वाळ माळा,
देवी कठला रूप तू मेघ काळा,
देवी अन्नल रूप आकाश भम्मे,
देवी मानवा रूप मृतलोक रम्मे।

हे देवी ! अग्नि मे ज्वाला रूप और काले मेघो मे विद्युत रूप तुम्ही हो। आकाश मे अनलपक्षी के रूप मे भ्रमण करती हो और मृत्युलोक मे मनुष्य रूप मे तुम्ही विचरण कर रही हो।

देवी आतमा रूप काया चलावे,
देवी काया रे रूप आतम मिलावे;

देवी रूप वासत रे वन्न राजे,
देवी आग रे रूप तू वन्न दाझे।

हे देवी! आत्मा रूप से इस शरीर का सचालन तुम्ही करती हो और शरीर रूप से इस आत्मा को आनन्द देने वाली भी तुम्हीं हो। वन मे वसन्त रूप मे तुम्ही विराजमान हो और अग्नि रूप मे तुम्ही वन को जलाती हो।

देवी रुकमणी रूप तू कान सोहे,
देवी कान रे रूप तु गोपि मोहे,
देवी सीतरे रूप तू राम साथे,
देवी राम रे रूप तू भगत हाथे।

हे देवी! रुक्मणी के रूप मे तुम्ही कृष्ण के पास विराजमान रहती हो और कृष्ण के रूप मे गोपियो को तुम्ही ने मोहित किया है। हे देवी! तुम सीता के रूप मे राम के साथ रहती हो और राम के रूप मे तुम भक्तो के वश मे हो।

देवी वाल्मिक व्यास रूपे तु कृत्त
देवी रामायण पुराणो भागवत्त,
देवी कावारे रूप तू पाथ लूटे,
देवी पाथरे रूप भाराथ जूटे।

हे देवी! वाल्मीकि और वेदव्यास के रूप मे रामायण और भागवत पुराण की रचयिता तू ही है। अर्जुन को कावा रूप में लूटने वाली शक्ति तू ही है और अर्जुन के रूप मे महाभारत के युद्ध मे तुमने ही शस्त्र चलाये।

देवी माणसर रूप मुगता निपावे,
देवी मराल रूप मुगता तु पावे,

देवी वामणं रूप वळराव भाडे,
देवी रूपं वळराव मेरु उपाडे।

हे देवी! मानसरोवर के रूप मे तुम मोती उत्पन्न करती हो। मराल के रूप मे उसी मानसरोवर मे तुम स्वय मोती चुगती हो। वामन रूप धारण कर वलिराजा को सकट में डालने वाली शक्ति तुम्ही हो। वलिराजा के रूप मे समुद्र-मथन के द्वारा मेरु पर्वत को उखाडने वाली शक्ति हे देवी, तुम्ही हो।

देवी रोग भव हारणी त्राहि माम,
देवी पाहि पाहि देवी पाहि मामं,
देवी बारहठ ईशरो बीरदावे,
देवी सेविया तने सव सुख पावे।

सासारिक रोगो का नाश करने वाली हे देवी, मेरी रक्षा कर, रक्षा कर। मैं तुम्हारी शरण मे हूँ। ईसरदास बारहठ तुम्हारी स्तुति और प्रशसा कर रहा है। तुम्हारी भक्ति करने से सभी प्रकार के सुखो की प्राप्ति होती है।

घम घमंत घूघरी, पाय नेउरी रणझण।
डम डमत डाकली, ताल ताली वज्जे तण॥
पाय सिंघ गल अडे, चक्र झलहले चउदह।
मले क्रोड तेतीश, उदो सरियंद अणंदह॥
अदभूत रुप शक्ति अकल, प्रेत दूत पालतियं।
गहे गहे वार डमरु डहक, महमाया आवतियं॥

तुम्हारे नूपुरो और पैरो मे पहने हुये घु घरुओ की मधुर ध्वनि हो रही है। करताले वज रहे है, डमरु पर डिम्-डिम् नाद हो रहा है। तुम्हारे चरण सिंह की गर्दन पर शोभा पा रहे है। तुम्हारे हाथ के चक्र और त्रिशूल चारो दिशाओ मे भिलमिला रहे हैं। सुरेन्द्र आदि तेतीस करोड देवी-देवता तुम्हारे दर्शन पा आनन्दित होकर तुम्हारा जयनाद कर रहे है। प्रेतदूतो का पालन करने वाली, अद्भुत रूप वाली हे महामाया ! तुम्हारे आगमन के समय डमरू की डिम्-डिम् ध्वनि हो रही है।



महाकवि बाँकीदास आसिया : जीवनी

राजस्थानी भाषा के साहित्यकोश को समृद्ध करने वाले कवियो मे बाँकीदास आसिया का नाम बहुत ही गौरव के साथ स्मरण किया जाता है। राजस्थानी साहित्य के सृजन की जो परम्परा १० वी–११ वी शताब्दी से प्रारम्भ हुई वह १६ वी शताब्दी तक अटूट रूप मे चलती रही और आज भी यह परम्परा मौजूद है। किन्तु कुछ राजनैतिक परिस्थितियो एव राजस्थानी को स्वतन्त्र भाषा के रूप मे मान्यता न मिलने के कारण साहित्य-सृजन मे वह उत्साह और प्रवेग नही रहा। बाँकीदास आसिया १९ वी शताब्दी के राजस्थानी साहित्य के अत्यन्त ज्वाजल्यमान रत्न हैं। काव्य, गद्य एव इतिहास के क्षेत्र मे इन्होने जो महिमामय सृजन कार्य किया है, वह राजस्थानी साहित्य के इतिहास मे सदैव अकित रहेगा। वीरता, देश प्रेम, जातीय गौरव धर्म, नीति, दर्शन, समाज सुधार आदि विषयो पर इनके ३६ काव्य-ग्रथ मिलते हैं। इन ग्रथो के अतिरिक्त इनका स्फुट काव्य भी प्रचुर मात्रा मे मिलता है। 'बाँकीदास री ख्यात' नाम से इन्होने एक इतिहास ग्रथ भी लिखा जो राजस्थानी के ख्यात साहित्य मे अपना महत्वपूर्ण स्थान रखता है। राजस्थानी गद्य की भी यह एक अच्छी रचना मानी जाती है। इस प्रकार बाँकीदासजी आसिया का राजस्थानी साहित्य व इतिहास को महत्वपूर्ण योगदान है।

जीवन वृत्त—बाँकीदासजी का जन्म विक्रम सवत १८३८ मे एक छोटे से गाव भाडियावास (तहसील पचभद्रा, जोधपुर) मे एक आसिया चारण परिवार मे हुआ। आसिया चारणो का एक गोत्र है। 'आसा' नामक पुरुष से आसिया गोत्र का सूत्रपात हुआ,—ऐसी एक मान्यता है। मारवाड के प्राचीन शासक नागवशी क्षत्रियो

के ये पोलपात थे (द्वार पर दान ग्रहण करने वाले)। बाद मे पडिहार शासको ने भी इन्हे अपना पोलपात बनाया था। जोधपुर के राठोड शासकों ने भी इन्हे सम्मान प्रदान किया था—इतिहास मे इसका उल्लेख मिलता है। इस प्रकार सिद्ध हो जाता है कि बांकीदासजी के पूर्वजो का सम्बन्ध पीढियो तक राजघराने से रहा।

बांकीदासजी की प्रारम्भिक शिक्षा घर पर ही हुई। इनके पिता ने इन्हे डिंगल भाषा की व्याकरण एव छन्दशास्त्र की शिक्षा दी। नरहरीदास कृत राजस्थानी का प्रसिद्ध भक्ति-काव्य 'अ तार चरित्र' भी इन्होने अपने पिता से ही पढा। बाल्यकाल मे ही ये कविता बनाने लगे थे। उच्च शिक्षा हेतु पिता ने इन्हे अपने एक विद्यानुरागी उदार मित्र रायपुर के ठाकुर अर्जुनसिंह ऊदावत के पास भेजा। बांकीदासजी ने वहा पहुचते ही अपनी काव्य प्रतिभा से उनको मोहित कर लिया। प्रथम साक्षात्कार के समय ही अपना एक तत्काल—रचित दोहा उन्होने ठाकुर साहिब को सुनाया—

रविरथ चक्र गणेश रद, नाक अलकृत नार।
यू हिज इम इळ पर अजो, दीपै सूर दतार॥

अर्थात् सूर्य के रथ मे एक ही पहिया है गणेशजी के भी एक ही दात है। रूपवती स्त्री के नाक भी एक ही होता है। इसी प्रकार इस पृथ्वी पर हे अर्जुनसिंह! दानियो और शूरवीरो मे भी आप अकेले ही है।

ठाकुर साहिब इस दोहे को सुनकर बहुत प्रसन्न हुये। उन्होने देखा कि बालक मे काव्य-प्रतिभा है। उन्होने बांकीदासजी को विद्याध्ययन हेतु जोधपुर भेज दिया। अपने कामदार को आदेश दे दिया कि इस बालक को किसी प्रकार का कष्ट न होने पाये, इसे हमारे परिवार का ही सदस्य समझा जाय।

बांकीदासजी जोधपुर मे पाँच वर्ष तक रहे। यहाँ इन्होंने व्याकरण काव्यशास्त्र, सस्कृत, ब्रज, पिंगल उर्दू, फारसी, इतिहास

आदि विषयो का विशद अध्ययन किया। अनेक गुरुओ के सान्निध्य मे रहकर इन्होंने अनेक विद्यायें प्राप्त की। इसे स्वय बांकीदास ने एक स्थान पर स्वीकार किया है—वक इतेयक गुरु किये, जितयक सिर पर केस'।

विद्याध्ययन के पश्चात् ये ठाकुर अर्जुनसिंह के पास रायपुर लौट आये। ठाकुर ने सम्मान के साथ इन्हे अपने यहां रखा। विक्रम स १८६० मे इनके परिवार के सदस्यो और गाँव के पालिवाल ब्राह्मणो के बीच जमीन के लगान आदि को लेकर झगडा हो गया। इस बार सयोग से इनका साक्षात्कार जोधपुर नरेश महाराजा मानसिंह के गुरु आयस देवनाथजी से हुआ। देवनाथजी नाथो के प्रसिद्ध मठ महामदिर के स्वामी थे। विद्याप्रेमी, गुण ग्राहक और स्वय कवि भी थे। बांकीदासजी ने अपनी काव्य-प्रतिभा से इन्हे भी मुग्ध कर लिया। देवनाथजी ने महाराजा मानसिंह से इनकी प्रशसा की। मानसिंह के दरबार मे इनके काव्य पाठ का आयोजन हुआ। मानसिंहजी स्वय उच्चकोटि के विद्या प्रेमी गुण-ग्राहक और विराट प्रतिभा के कवि थे। बांकीदासजी को उसी समय लाख पसाव [एक लाख रुपये का पुरस्कार] से सम्मानित किया गया। जागीर मे कूडी और सारगवास गाँव भी दिये गये।

हम ऊपर कह आये है कि बांकीदासजी अनेक भाषाओ के ज्ञाता थे। महाराजा मानसिंहजी ने इन्हे अपना भाषागुरु बनाया। इस तथ्य को सिद्ध करने वाली एक मोहर [मुद्रा] बांकीदासजी के वशजो के पास आज भी विद्यमान है जिस पर निम्नांकित छन्द अकित हैं—

श्रीमान मान धरणिपति, बहुगुन रास।
जिन भाषा गुरु कीनो, बांकीदास॥

बांकीदासजी इतिहास के भी प्रकाण्ड पण्डित थे। एक बार ईरान के बादशाह के परिवार का एक व्यक्ति विश्व की यात्रा करता हुआ जोधपुर पहुँचा। उसके साथ कुछ और लोग भी थे। वे

जोधपुर नरेश के अतिथि के रूप में कुछ दिन रहे। एक बार उन्होंने महाराजा से कहलवाया कि आपके यहाँ कोई इतिहास का जानकार हो तो उसे बातचीत के लिये भेजें। बाँकीदासजी भेजे गये। ईरान के शाही परिवार का वह व्यक्ति बाँकीदास के इतिहास ज्ञान से इतना प्रभावित हुआ कि उसने महाराजा को कहा कि इतिहास का ऐसा जानकार मेरी दृष्टि में अभी तक नही आया। बाँकीदास को अपने साथ ले जाने की इच्छा भी उसने प्रकट की।

बाँकीदासजी की स्मरण-शक्ति भी अद्भुत थी उन्हे अनेक छन्द कण्ठस्थ थे। वेद, पुराण और शास्त्र का भी उनका अध्ययन बहुत गहरा था।

गुरु के साथ महाराजा मानसिंह के वे विश्वास पात्र मित्र भी थे। अपने परिवार, राज्य-व्यवस्था और अनेक अन्य विषयो मे वे इनसे परामर्श भी लेते थे। इनके बीच होनेवाले मनोरजन, काव्य चर्चा वार्तालाप आदि को लेकर अनेक जन-श्रुतियो आज भी प्रचलित है। बाँकीदासजी ने तो अपने अनेक छन्द और गीत मानसिंह को सम्बोधन देते हुये लिखे ही हैं। मानसिंहजी के भी ऐसे अनेक छन्द मिलते है जिनमे बाँकीदासजी को 'कवि बक' कहकर सम्बोधन दिया गया है। इनसे इनकी आत्मीयता और निकट-सबधो का परिचय मिलता है।

महाराजा मानसिंह ने अपने पुत्र युवराज छत्रसिंह को पढाने का दायित्व बाँकीदासजी को सौंपा था। छत्रसिंहजी की सगति ठीक नही थी उनकी प्रवृत्तियाँ और लक्षण भी अशुभ थे। बाँकीदासजी ने कुछ दिनो तक तो उन्हे पढाया और बाद मे बन्द कर दिया। महाराजा मानसिंह ने कारण पूछा तो साफ-साफ कह दिया कि आपका यह पुत्र कुलक्षणी है। यह आपको कष्ट देगा, आपके कुल को कलकित करेगा। मैं नही चाहता कि आप और समाज बाद मे मुझे भी बदनाम करें कि बाँकीदास ने कुँवर को यह किस प्रकार की शिक्षा दी। बाँकीदासजी की यह भविष्य वाणी अक्षरश ठीक निकली थी।

बाँकीदासजी का साक्षात्कार कवि पद्माकर से भी हुआ था। एक राजनैतिक संधि के फलस्वरूप जयपुर नरेश महाराजा जगतसिंहजी का विवाह महाराजा मानसिंहजी की पुत्री से हुआ था और महाराजा मानसिंह का विवाह जगतसिंहजी की बहिन से हुआ था। इस अवसर पर जगतसिंहजी की बारात में पद्माकर आये थे। इधर बाँकीदासजी को महाराजा मानसिंह की बारात में जाने का अवसर मिला था। इन दोनों कवियों में शास्त्रार्थ हुआ और कहते हैं कि उस शास्त्रार्थ में बाँकीदासजी विजयी हुये थे। महाराजा मानसिंह ने उसी समय इन्हे 'विजय-सिरोपाव' से सम्मानित किया।

उदयपुर के महाराणा भीमसिंहजी भी बाँकीदासजी की काव्य-प्रतिभा और इतिहास-ज्ञान पर मोहित थे। वे इन्हे अपना आश्रित बनाना चाहते थे। इनको ले जाने के लिये महाराणा ने हाथी, घोडे और सामन्त भेजे। एक प्रलोभन भरा पत्र भी आया। स्वयं मानसिंहजी ने भी कहा कि जब इतने सम्मान से बुला रहे हैं तो चले जाओ किन्तु बाँकीदासजी ने अस्वीकार कर दिया। महाराजा मानसिंह से उन्हे अनन्य स्नेह था और जीवन भर वे मानसिंहजी के पास ही रहना चाहते थे। इस प्रसंग का एक छन्द भी मिलता है जो इस प्रकार है—

पारस की परवाह नहीं, परवाह रसायन की न रही है।
बंक सौ दूर रहौ सुरपादप, चाह मिटी कित मेरु मही है॥
देवन की सुरभी दिस दौर, थकी मन की सब साची कही है।
मांग हौ एक मरुपति मांन कौ, नाथ निभायगो टेक गही है॥

महाराजा मानसिंहजी श्री बाँकीदासजो से इतना ही स्नेह करते थे। अपने जीवन में वे उन्हें अपरिहार्य समझते थे। एक-बार पावस ऋतु के एक मनोरम दिवस पर सूरसागर(जोधपुर से कुछ दूर अवस्थित एक सरोवर) के राज महलों में एक राग-रंग कार्यक्रम का आयोजन किया गया था। महाराजा वहाँ पहले ही पहुँच गये थे।

बाँकीदासजी को कुछ विलम्ब हो गया। वे अपनी पालकी पर जल्दी जल्दी जा रहे थे। मार्ग मे आगे रानियो की पालकियाँ जा रही थी। बाँकीदासजी ने राज्य के नियमो का उल्लघन कर अपने कहारो को आदेश दिया कि पालकी को रानियो की पालकियो से आगे करलो। इस पर रानियाँ बहुत ही कुपित हुईं। महाराजा मानसिंहजी को इस घटना का पता लग गया। राग-रग कार्यक्रम मे कोई व्यतिक्रम न आये इसलिये उन्होंने रानियो को कहलाया कि बाँकीदासजी को घोर दण्ड दिया जायेगा। कार्यक्रम के पश्चात् जब रानियाँ और महाराजा किले पर लौटे तो उन्हे बाँकीदासजी की अशिष्टता का पुन स्मरण कराया गया। तब महाराजा ने रानीजी से कहलाया कि आपके मरने पर मुझे दूसरी रानी मिल जायेगी किन्तु बाँकीदासजी को यदि मैं प्राण दण्ड दूँ अथवा अपने राज्य से निकालूँ तो मुझे ऐसा कवि नही मिल सकता। इससे सिद्ध होता है कि मानसिंहजी भी बाँकीदासजी को हृदय से चाहते थे।

महाराजा मानसिंह के दरबार मे बाहर से कवि और पडित अक्सर आया करते थे। एक बार अम्बाराय नामक एक कवि आये। उन्होने महाराजा के पास एक छप्पय लिखकर भेजा और प्रार्थना की कि इसका अर्थ अपने किसी आश्रित कवि से करवा दीजिये। अन्यथा मैं समझूँगा कि आपके यहाँ वास्तव मे कोई पण्डित और कवि नही है—सब प्रवचक हैं। स्वय महाराजा भी उस छप्पय के अर्थ को स्पष्ट नही कर सके। छप्पय इस प्रकार था—

झुरत पत्र झुर गए तु पत्र, न न पत्र सु झुर गए।
मुरन अब मुर गए तु अब, न न अब सु मुर गए॥
खुलत कमल खुल गए तु कमल, न न कमल सु खुल गए।
भमत भमर भम गए तु भमर, न न भमर सु भम गए॥
अब राय विद्वान पर, उपज्यो भ्रम मोचत विसर।
चद बदनो चदा श्रव, विलखत चद सुकवन पर॥

महाराजा ने बाँकीदासजी से अर्थ स्पष्ट करने के लिये कहा। स्वयं बाँकीदासजी भी पहले तो चकरा गये। फिर सोच-समझ कर उन्होंने इस प्रकार अर्थ किया—तीन विवाहित सहेलियाँ जिनके पति प्रवास में गये हुये हैं परस्पर वार्तालाप कर रही हैं। पहली सखी कहती है—देख, वृक्षों के पत्ते झड़ गये। तब दूसरी कहती है कि हाँ झड़ तो गये अर्थात् पतझर आगया। अब वसन्त ऋतु आने वाली है और पतिदेव भी आने वाले हैं [क्योंकि पति वसन्त पर आने का कह कर गये थे]। तब तीसरी सखी कहती है कि पत्ते तो झड़ गये किन्तु वसन्त ऋतु नहीं आयी क्योंकि यदि वसन्त ऋतु आती तो पतिदेव भी आ जाते। तब पहली सखी कहती है कि देख, आम के वृक्षों पर मंजरी आगई। तब दूसरी सखी कहती है कि हाँ मंजरी तो आ गई। तब तीसरी सखी कहती है कि मंजरी कहाँ आई? यदि आ जाती तो पतिदेव भी आ जाते। इसी प्रकार 'कमल खिल गये, भवरे गुंजार करने लगे' आदि विषयों को लेकर भी उन तीनों सखियों में विवाद होता है। इनमें से एक को आकाश में निकले चन्द्रमा को देखकर भ्रम होता है कि यह तो देवताओं का विमान है जिसमें से अमृत झर रहा है और पतिदेव इसी में बैठकर आ रहे हैं—यह वास्तव में चन्द्रमा नहीं है।

बाँकीदास द्वारा किये गये इस अर्थ पर अम्बाराम बहुत ही प्रसन्न हुये। उन्होंने इन्हें 'गणेश' की उपाधि दी। महाराजा मानसिंह भी बहुत ही प्रसन्न हुये।

ठाकुर अर्जुनसिंह के उपकारों को बाँकीदासजी जीवन भर नहीं भूले। उनकी सहायता और उदारता से ही बाँकीदासजी विद्याध्ययन कर सके थे। एक बार महाराजा मानसिंह के साथ हाथी पर बैठ कर ये घूमने जा रहे थे। मार्ग में ठाकुर अर्जुनसिंहजी मिल गये। प्रसगवश ठाकुर साहिब ने इन्हें बाल्यकाल के दिनों की याद दिलादी। तब बाँकीदासजी ने ठाकुर साहिब द्वारा किये गये उपकारों के प्रति कृतज्ञता प्रकट करते हुये निम्नांकित दोहा सुनाया—

माळी ग्रीखम मांय, पोख सुजन द्रुम पाळियो।
जिण-रो जस किम जाय, अत घण वूठा ही अजा॥

अर्थात् माली ने ग्रीष्म ऋतु मे पानी पिला पिला कर वृक्षो की रक्षा की। आज वर्षा ऋतु मे उसके यश को कैसे विस्मृत किया जा सकता है?

बाकीदासजी स्वय भी बहुत बड दानी थे। इन्होंने अपने याचक मोतीसरो, ढाढियो और ढोलियो को हजारो रुपयो का दान दिया था।

इनके कोई सन्तान नही हुई। अपने एक भाई के पुत्र भारतदान को इन्होने गोद लिया था। श्रावन शुक्ला ३ वि स १८९० को इन्होंने देहत्याग किया। इनकी मृत्यु से महाराजा मानसिंहजी को अत्यन्त आघात लगा। उनके द्वारा कहे गये ये मरसिये उनकी आन्तरिक वेदना को प्रकट करते हैं—

सद्विद्या बहु साज, बाकी थी बाका! बसु।
कर सूधी कविराज, आज कठीगो आसिया।
विद्या, कुल विख्यात, राजकाज हर रहसरी।
बाका! तो विण बात, किण आगळ मनरी कहा?

हे बांकीदास! तुम्हारी नाना प्रकार की विद्याओ के बांकपन से यह धरती बांकी थी। इसे सीधी [बांकपन से रहित] करके तुम कहाँ चले गये? विद्या, परिवार की समस्याओ राजकाज के प्रत्येक रहस्यो की चर्चा मैं तुमसे किया करता था। तुम्हारे अभाव में अब अपने मन की बात मैं किसे कहूँ?

महाराज मानसिंह के दरबार मे कविराज बांकीदासजी का कितना सम्मान था। इस सम्बन्ध मे स्वय बांकीदासजी द्वारा रचित एक कवित्त मिलता है जो इस प्रकार है—

केसो इद्रजीत, कुलपति रामसिहजू कै,
चद प्रथीराज कै, खुसाल कहै जन कै।
भगड ज्यो रान कै, विहारी जयसिहजू कै,
गग ही प्रवीन अकवर कै॥
भूपण सिवाकै, लीलाधर गजसिहजू कै,
कवि ज्यो कवलनैन अनुवर खान कै।
कालीदास भोज कै, ज्यो विक्रम कै वयताल,
ज्यो ही कवि बाँकीदास महाराजा मान कै॥

ग्रंथ परिचय—बाँकीदासजी ने कुल ३६ से भी ऊपर ग्र थ लिखे। इनमे से अधिकाश बाँकीदास ग्रथावली के नाम से तीन भागो मे काशी नागरी प्रचारिणी सभा से प्रकाशित हुये हैं। एक दूसरा महत्वपूर्ण ग्रथ 'बाँकीदासरी ख्यात' राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर से प्रकाशित हुआ है। कुछ ग्र थ अभी तक अप्रकाशित हैं और कुछ ग्रथ अभी अप्राप्य हैं। नीचे इन ग्र थो का सक्षिप्त परिचय दे रहे है।

बाँकीदास ग्र थावली, प्रथम भाग मे जो ग्रं थ सकलित हैं वे इस प्रकार हैं—

१ सूर छतीसी—यह एक अत्यन्त लघु काव्यकृति है। इसमें शूरवीर के वीरत्व, रणकौशल, आत्मत्याग आदि गुणो की ३८ दोहों मे प्रशसा की गई है।

२. सीह छतीसी—इस कृति मे भी केवल ३८ दोहे है। इसमें वीरो [सिंह] की प्रशसा की गई है।

३. वीरविनोद—इस कृति मे कुल ७५ दोहे हैं। सिंह का रूपक बाध कर कवि ने प्रत्येक दोहे मे वीर पुरुष और रणकुशल योद्धा की प्रशसा की है। वीर भाव की नानाविधि अभिव्यजना इस कृति में हुई है।

४ धवल पचीसी—इसमे केवल ३४ दोहे हैं। इसमें भी वीर की प्रशसा की गई है। 'धवल' का अर्थ यो बैल है किन्तु राजस्थानी वीरकाव्य मे यह शब्द वीर के प्रतीक-रूप मे प्रयुक्त हुआ है।

५ दातार बावनो—इसमे ५३ छद हैं। इन दोहो मे दानी और उदार व्यक्ति की प्रशसा हुई है।

६ नीति मजरी—यह एक छोटा सा नीति काव्य है। इसमे कुल ३६ दोहे और सोरठे हैं। जीवन व्यवहार, धर्म और राजनीति सम्बन्धित अनेक महत्वपूर्ण तत्वो और विषयो का अनुभूतिमय वर्णन इस कृति मे हुआ है।

७ सुपह छत्तीसी—इसे ऐतिहासिक काव्य कहना उपयुक्त रहेगा। इसमे कुल ३६ दोहे हैं। प्रत्येक दोहे मे राजस्थान और भारतवर्ष के दानवीर और शूरवीर श्रेष्ठ राजा की प्रशसा की गई है। यह कृति इतिहास पर अच्छा प्रकाश डालती है।

बाँकीदास ग्र थावली, भाग २ मे सकलित ग्र थ इस प्रकार हैं–

१ वैसक वार्ता—इस ग्र थ मे वेश्या और वेश्यागामी व्यक्तियो के आचरण का व्यगात्मक चित्रण किया गया है। इसमे कुल ५६ दोहे है।

२ मावडिया मिजाज—इस ग्रथ मे ऐसे व्यक्तियो का चित्रण हुआ है जो स्त्रै ण-भावना से पीडित होते है—जिनमे पुरुषोचित स्वभाव का अभाव होता है। इस कृति मे कुल ८८ दोहे हैं।

३ कृपण दर्पण—इस कृति मे केवल ४५ दोहे है। कृपण व्यक्ति की मनोवृत्तियो का इसम व्यगात्मक चित्रण हुआ है।

४ मोह मर्दन—इस कृति मे कुल ३६ दोहे और सोरठे है। इसमे सासारिक मोह ममता जीवन की नश्वरता अविद्या आदि का चित्रण कर ईश्वर स्मरण और मोक्ष साधना का महत्व बताया गया है।

५ चुगलमुख चपेटिका—इस कृति मे चुगलखोरो और दुष्टात्माओ की नि दा की गई है। इसमे कुल ५२ दाहे हैं।

६ वंस वार्ता—इस कृति मे कुल ७७ दोहे हैं। इसमे वणिक वर्ग और उसकी छल-कपट, स्वार्थ-परायणता कृपणता आदि समाजघाती प्रवृत्तियो का व्यगात्मक चित्रण हुआ है।

७ कुकवि बत्तीसी—इस कृति मे कुल ३६ दोहे हैं। इन दोहो मे ऐसे कवियो का उपहास और निन्दा की गई है जो काव्य मर्म और कवि धर्म को नही समझते और जो साहित्य की चोरी करते है।

८. विदुर बत्तीसी—इस ग्रथ मे 'विदुर' से कवि का अर्थ दासीपुत्र,दास अथवा दरोगा जाति के लोगो से रहा है। ३५ दोहो मे रचित इस ग्रथ मे कवि ने इस दरोगा जाति की स्वभावगत आदतो का व्यग और हास्यमय चित्रण किया है।

९ भुरजाल भूषण—भुरजाल का अर्थ है दुर्ग। कवि ने ७० दोहो मे रचित इस ग्रथ मे चित्तौड गढ के दुर्ग की प्रशसा की है। साथ ही जयमल और पत्ता का कीर्ति गान भी किया है क्योकि उन्होने अकबर से भयकर युद्ध कर इस दुर्ग की रक्षा की थी। वीर-रस की अनुपम कृति होने के साथ इसमे अनेक महत्वपूर्ण ऐतिहासिक प्रसगो का उल्लेख भी हुआ है। इसे बांकीदासजी की गौरव-मय कृति कहा गया है।

१० गगालहरी—४४ दोहे और सोरठे छन्द मे लिखित इस कृति मे पतितपावनी गगा की महिमा का वर्णन हुआ है। भाषा और अलकारो की दृष्टि से यह रचना काफी प्राजल है।

बांकीदास ग्रथावली के तीसरे भाग मे सकलित ग्रथ इस प्रकार हैं—

१ जेहल जस जडाव—यह एक छोटा सा चरित काव्य है। इसमे कुल ७४ दोहे और सोरठे हैं। कच्छ भुज के प्रसिद्ध जाडेचा वशी राजा जेहल [जैमल] का यश-वर्णन इस काव्य मे हुआ है। इस ग्रथ में कुछ महत्वपूर्ण ऐतिहासिक प्रसग भी वर्णित हुये हैं।

२ कायर बावनी—इस ५४ दोहो की छोटी सी कृति में कवि ने उन कायरो की निन्दा और उपहास किया है जो दुष्टात्मा होने

है, खुशामद कर जो अपने स्वामियो को अज्ञान मे रखते है। विपत्ति आने पर जो नौ दो ग्यारह हो जाते है। बाँकीदासजी की यह कृति अत्यन्त सशक्त और लोकप्रिय है।

३ **भमाल-राधिका-नखसिख वर्णन**—भमाल छद मे रचित काव्योत्कर्ष की दृष्टि से बाँकीदासजी की यह एक उत्कृष्ट रचना है। इसमे कुल २६ छन्द है। राधा के नखसिख शृ गार का चित्रण इस काव्य का मुख्य विषय है। इस कृति मे कवि का भाषा-सौन्दर्य और काव्यशिल्प—दोनो दृष्टव्य हैं।

४ **सुजस छत्तीसी**—इस कृति मे वीरो और दानियो का यश वर्णन किया गया है। अनुदार और कृपण लोगो की निन्दा भी इसमे हुई है। इसमे कुल ३६ दोहे और सोरठे है।

५ **सतोष बावनी**—मानव मन की सात्विक प्रवृत्ति 'सन्तोष' का महत्व-वर्णन इस कृति मे हुआ है। कुछ स्थलो पर असन्तोष की खण्डना की गई है। पूरी कृति मे ५५ दोहे और सोरठे है।

६ **सिधराव छत्तीसी**—यह एक छोटी सी ऐतिहासिक प्रबन्ध-रचना है। गुजरात के प्रसिद्ध राजा सिद्धराज जयसिंह के गौरव-पूर्ण चरित्र का इसमे अत्यन्त सक्षेप म वर्णन हुआ है। इसमे कुल ३९ दोहे और सोरठे है।

७ **वचन विवेक पच्चीसी**—केवल २८ दोहो मे रचित इस छोटी सी काव्य-कृति मे कवि ने वाणी के विवेक का वर्णन किया है। शुभ मधुर प्रिय और शिष्ट वाणी का जीवन मे अत्यन्त महत्व है—यही इस कृति का मूल स्वर है। मुहावरेदार भाषा और सूक्तियो के कारण यह कृति भी अत्यन्त लोकप्रिय है।

८ **कृपण पच्चीसी**—कृपण दर्पण' के समान इस कृति मे भी कजूस और अनुदार व्यक्ति की निन्दा की गई है। इसमे कुल २९ दोहे है। इस रचना मे एक दो अन्य प्रसिद्ध कवियो के दोहे भी हैं इसलिये सन्देह होता है कि यह रचना बाँकीदासजी की न हो। सभव है किसी अन्य कवि ने यह सग्रह तैयार किया हो।

हमरोट छत्तीसी—हमरोट से कवि का अर्थ ऊमरकोट(हमीर-कोट) से रहा है। इसमे ऊमरकोट के सक्षिप्त इतिहास, जलवायु, वहां के निवासियो आदि का वर्णन हुआ है।

इन ग्रथो के अतिरिक्त बाकीदासजी का एक अन्य महत्वपूर्ण ग्र थ भी प्रकाशित हुआ है—वह है 'बाकीदास री ख्यात'। राजस्थानी साहित्य के विद्वान् प्रो नरोत्तम स्वामी ने इसका सम्पादन किया है और राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान ने इसे प्रकाशित किया है। यह गद्य साहित्य की कृति है। राजस्थान और भारत के प्राचीन इतिहास से सम्बन्धित सामग्री इस ग्र थ का विषय है। इसमे ऐतिहासिक घटनाओ, राजाओ के नाम, राजवशो, राजधानियो आदि पर केवल सक्षिप्त टिप्पणियाँ दी गई हैं। कुछ ऐतिहासिक वार्ताये भी दी गई है। कुछ स्थलो पर पद्य का प्रयोग भी मिलता है।

इन प्रकाशित ग्रथो के अतिरिक्त बाकीदासजी की जो अप्रकाशित रचनायें मिलती है वे इस प्रकार हैं—१ कृष्णचद्र चन्द्रिका, २ विरह चन्द्रिका ३ चमत्कार चन्द्रिका, ४ मान यशो मण्डल, ५ चन्द्रदूपणदर्पण, ६ वैशाख वार्ता सग्रह, ७ श्री दरबार री कविता, ८ वृक्ष रत्नाकर, ९ रस तथा अलकार का ग्र थ, १० महाभारत छन्दानुनाद, ११ ऐतिहासिक वार्ता सग्रह, १२ अन्तर्लापिका।

उपरोक्त समस्त प्रकाशित और अप्रकाशित साहित्य के अतिरिक्त बाकीदासजी द्वारा रचित सहस्रो डिंगल गीत एव स्फुट छन्द मिलते है। इनमे से अधिकाश प्रकाशित भी हुये है।

बाकीदासजी के इस सम्पूर्ण साहित्य की विषय-वस्तु, कला, शिल्प और भाषा पर जब हम दृष्टिपात करते हैं तो नि सकोच यह कहना पड़ता है कि ये राजस्थानी साहित्य के एक बहुमुखी प्रतिभा वाले अत्यन्त सशक्त और गौरवशाली कवि हैं। इनके काव्य मे विषय वैविध्य है। राजा की अतिरजित प्रशसा है तो कायर, कृपण, लोभी वैश्य, दुश्चरित्र वेश्या, कुकवि आदि पर खुल कर व्यग-प्रहार भी इनके काव्य मे मिलते है। राजस्थान की बालुकामयी

धरती का प्राकृतिक परिवेश, संस्कृति, समाज और इतिहास का व्यापक चित्रण इनके साहित्य मे हुआ है।

यद्यपि दोहा और सोरठा इनके प्रिय छन्द रहे है किन्तु इन्होंने सहस्रो डिंगल गीत भी लिखे हैं। झमाल, सवैया, कवित्त, छप्पय आदि छन्दो का प्रयोग भी इनके काव्य मे खूब हुआ है।

इन्होने अपना सम्पूर्ण साहित्य अपनी मातृभाषा राजस्थानी मे लिखा है। कही-कही उर्दू, फारसी और व्रज के शब्दो का प्रयोग भी हुआ है किन्तु इनका आग्रह सर्वत्र शुद्ध एव साहित्यिक राजस्थानी का रहा है। अपनी गद्य-रचनाओ मे भी बांकीदासजी विशुद्ध राजस्थानी भाषा के पक्षधर रहे है।

सक्षेप मे, यह कह सकते है कि कविराजा बांकीदास आसिया, राजस्थानी साहित्य के एक कीर्तिमान स्तम्भ है।



बांकीदासजी : कविता

नमसकार सूरा नरां, पूरा सतपुरसांह ।
भारत गज थाटां भिड़ै, अड़ै भुजां उरसांह ॥

हे शूरवीरो ! तुम्हे नमस्कार है । तुम पूरे सत्पुरुष हो । युद्ध में तुम हाथियो के समूह से लड़ते हो । उस समय तुम्हारे विशाल हाथ आकाश को छूने लगते हैं ।

कापुरसां फिट कायरां, जीवण लालच ज्यांह ।
अरि देखै आराण मै, तृण मुख मांझल त्यांह ॥

उन कापुरुष कायरो को धिक्कार है जिन्हे प्राणो की ममता रहती है और जो युद्ध मे शत्रुओ को देखते ही अपने मुंह मे तिनके रख लेते हैं ।

सूर न पूछै टीपणो, सुकन न देखै सूर ।
मरणां नूं मंगल् करै, समर चढै मुख नूर ॥

शूरवीर न तो पचांग देखता है और न शकुन ही पूछता है । मृत्यु को वह मागलिक कार्य समझता है । युद्ध के समाचार मात्र से उसके मुख पर तेज छा जाता है ।

कर कृपाण मोरत किसूं, आखै सूर अबीह ।
रण मर स्वरग सिधावणो, सु तो सुरंगो दीह ॥

निर्भय शूरवीर कहता है कि हाथ में सदैव कृपाण धारण करने वाले के लिये मुहूर्त कैसा ? युद्ध में प्राण-त्याग कर स्वर्ग में

प्रस्थान करने के दिन के अतिरिक्त और कौनसा दिन श्रेष्ठ हो सकता है ?

दामोदर दीजै मती, कायर काटै वास।
सरणै राखै सूर रै, तेथ न व्यापै त्रास॥

हे दामोदर! किसी कायर के निकट निवास मत देना। शूरवीर की शरण में रखना जिससे वहाँ किसी प्रकार का भय न सताये।

सूरातन सूरां चढै, सत सतियां सम दोय।
आडी धारा ऊतरै, गणै अनळ नू तोय॥

शूरवीरो मे शूरत्व चढता है और वीरागनाओं मे सतीत्व। इस प्रकार शूरत्व और सतीत्व दोनो बराबर है। शूरवीर तलवारों से कट कर प्राण दे देते है और सतियां अग्नि को पानी गिनती हैं।

के सूरा धर कज्ज है, के सूरा पर कज्ज।
सुरपुर दोहू सचरै, रुका ह्वै रजरज्ज॥

कई शूरवीर धरती के लिये और कई परमार्थ के लिये तलवार से कट कर टूक-टूक हो जाते हैं। ये दोनो ही प्रकार के शूरवीर स्वर्ग जाते है।

सखी अमीणो साहिबो, बांकम सूं भरियोह।
रण विकसै रितुराज में, ज्यूं तर हरियोह॥

हे सखी! मेरे पतिदेव मे वीरता का बांकपन भरा हुआ है। जिस प्रकार वसन्त ऋतु मे हरा वृक्ष प्रफुल्लित हो जाता है उसी प्रकार युद्ध के समय मेरे पतिदेव भी अत्यन्त प्रफुल्लित हो जाते हैं।

छूटा जामण मरण सूं, भवसागर तिरियाह।
सुंवा जूझ जे रण मही, वे नर ऊवरियाह॥

जो मनुष्य रणभूमि मे युद्ध करते हुये मर गये वे जन्म मरण के बन्धन से छूट गये, भव सागर से उनका बेडा पार हो गया और वे अमर हो गये।

[सूर छत्तीसी]

हाथळ बळ निरभै हियौ, सरभर न को समत्थ ।
सीह अकेला सचरै, सोहा केहा सत्थ ।।

पजे की शक्ति के आधार पर ही सिंह का हृदय निर्भय रहता है। उससे समानता करने में कोई समर्थ नही। सिंह अकेला ही विचरण करता है, उसे किसी के साथ की आवश्यकता नही होती।

नवहत्थो मत्थो वडो, रोस भटक्कै रार ।
ओ कूभाथल ऊपरा, हाथळ वाहण हार ।।

यह (सिंह) नौ हाथ लम्बा है। इसके नेत्रो मे क्रोध भडकता रहता है। हाथी के कुम्भस्थल पर यह पजा चलाता है।

सादूळो वन सचरै, करण गयदा नास ।
प्रबळ सोच भमरा पडै, हसा हुवै हुलास ।।

हाथियो का विनाश करने के लिये सिंह वन मे विचरण करता है। इससे भंवरो को अत्यधिक चिन्ता होती है क्योकि हाथियो के मरने पर उनका मद उन्हे नही मिलता। हंस अत्यन्त प्रसन्न होते हैं क्योकि उन्हे भक्षण के लिये हाथियो के गजमुक्ता मिल जाते हैं।

सूतौ थाहर नींद सुख, सादूळो बळवत ।
वन काठै मारग वहै, पग-पग होल पडत ।।

बलवान सिंह अपनी मांद मे सुख की गहरी निद्रा मे सो रहा है। फिर भी उस वन के निकट के पथ से जाने वाले पथिक को कदम-कदम पर भय हो रहा है।

सीहाँ देस विदेस सम, सीहाँ किसा उतन्न ।
सीह जिकै वन सचरै, सो सीहाँ रो वन्न ॥

सिंह का अपना निजी कोई वतन नहीं होता। देश और विदेश उसके लिये दोनो बराबर है। जिस वन मे सिंह विचरण करता है वही उसका वन है।

केहर कुभ विदारियौ, गजमोती खिरियाह ।
जाँणे काळा जळद सू, ओळा ओसरियाह ॥

सिंह ने हाथी के कुम्भस्थल (मस्तक) को विदीर्ण कर दिया और उससे गजमोती इस प्रकार गिरे मानो काले मेघ मे से ओले गिरने लगे हों।

[सीह छत्तीसी]

अग न छूटै आखडी, सींहा सापुरसाह ।
आखडिया अळगी रहै, कुनरा कापुरसाह ॥

सिंह जैसे वीर सत्पुरुषो के अग कट जाते हैं किन्तु उनके द्वारा की गई प्रतिज्ञाये उनसे कभी अलग नही होती। कुत्तो के समान कायरो द्वारा की गई प्रतिज्ञायें उनसे अलग ही रहती है।

पग-पग काटा पाथरै, वादीलौ वनराव ।
होणौ ज्यूं त्यूं होवसी, दियै न हीणौ दाव ॥

हठीला सिंह कदम-कदम पर काटे बिछाता है। जैसा होना है वैसा होगा। वह कभी दीनता भरी वाणी का प्रयोग नहीं करता।

सावण जळहर गाज सुण, खीजै डर धर खार ।
जग सू उलटा जाणणा, वाघा तणा विचार ॥

श्रावण महीने मे बादल की गर्जना सुनकर हृदय मे क्रोध भर कर वह कुपित होता है(अन्य प्राणी तो मेघ गर्जना को सुनकर प्रसन्न होते हैं)। सिंह के विचार ससार के अन्य प्राणियो से विपरीत समझने चाहिये।

कुण दूजै चालै कहो, मृगपत वालै माग।
जुध मे काचा ताग जिम, तोडै ऊमर ताग॥

बताओ, सिंह के मार्ग पर अन्य कौन चलता है ? बस केवल वीर ही चलता है जो युद्ध मे अपनी आयु को कच्चे धागे की भाति तोड देता है।

घाल घणा घर पातळा, आयो थह मैं आप।
सूतो नाहर नीद सुख, पोहरो दियै प्रताप॥

अनेक निर्बल मनुष्यो को अपने घर मे डाल कर स्वय सिंह (वीर) अपनी मांद मे आया। अब वह सिंह सुख की गहरी नीद मे सो रहा है और उसका तेज (शक्ति) बाहर पहरा दे रहा है।

केळ रहै नित कापती, कायर जर्णै कपूर।
सीहण रण साकै नही, सीह जणै रण सूर॥

केले का वृक्ष सदैव कापता रहता है क्योकि वह कपूर जैसी कायर सन्तान (तत्काल उड जाता है) पैदा करती है। सिंहनी युद्ध से नही डरती क्योकि वह रण मे लडने वाले वीर पैदा करती है।

चमर ढुलै नह सीह सिर, छत्र न धारै सीह।
हाथल रा बल सू हुवो, ओ मृगराज अबीह॥

सिंह के मस्तक पर चँवर नही डुलते, न वह छत्र धारण करता है। यह मृगराज तो केवल अपने पजे की शक्ति से ही निर्भय हुआ है।

मोती नह सरवर मिलै, है लाघणिया हस ।
हण हाथल सादूळ हव, ऐरापत री वस ॥

सरोवर मे मोती नही मिल रहे है इसलिये वेचारे हस उपवास कर रहे है। अब सिंह ऐरावत वश के हाथियो को अपने पजे के प्रहार से मारेगा और भूखे हसो को तब खाने के लिये मोती मिलगे ।

वैर विसावै वाघ सू वन माझळ कर वास ।
जतन न राखै जाणजै, वेगो जास विणास ॥

जो वन मे रह कर सिंह से शत्रुता पैदा करता है तो समझ लो कि वह अपने शरीर का साधन नहीं रखता। ऐसे व्यक्ति का विनाश शीघ्र ही होता है।

भला पधारो भीचडा, गरक सिलह मैं गात ।
केहर वाळा वळह री, वळना कीजो वात ॥

कवच मे अच्छी तरह डूबे हुये हे वीरो ! आओ, तुम्हारा स्वागत है। पराजित होकर जब पीछे भगने लगो तब इस सिंह की युद्ध कुशलता की बात करना।

[वीर विनोद]

काकर करहो गार गज, थळ हैवर थाकत ।
न्हैं ठौड हेकण तरह, चगो धवळ चलत ॥

ऊँट ककर वाली भूमि पर हाथी दलदली भूमि मे और अच्छा घोडा रेतीले मैदान मे थक जाते है किंतु इन तीनो स्थानो पर बैल (वीर का प्रतीक) बहुत ही अच्छी तरह चलता है।

बापो धवला ! दाख वळ, तू जीवावण हार ।
मो घर रा गाडा तणो, तो खाधै भर भार ॥

हे पितृतुल्य बैल ! तू अपनी शक्ति दिखा, तू ही मेरा जीवन दाता है। मेरे घर की गाडी का सारा भार तुम्हारे कन्धो पर ही है।

धवला सूं राजै धणी, चंगो दीखै ग्वाड ।
नारायण मत नासजे, धवळा ऊपर धाड ॥

बैल से स्वामी सुशोभित होता है, घर का आगन भी सुन्दर लगता है। हे प्रभु ! इस बैल पर डाका मत डालना।

(धवल पचीसी)

दाता जग माता पिता, दाता साप्रत देव ।
दाता सरवस दान दे, ऊतर एक अदेह ॥

जगत के माता-पिता साक्षात् परमात्मा ही दानी है। वे ऐसे दानी हैं कि सर्वस्व दे देते हैं। उनके द्वार पर किसी याचक का 'खाली हाथ न लौटाना' ही एकमात्र उत्तर है।

दिन ऊगै नित देखणी, दाता रो दीदार ।
भागै भूख क्लेस भय, बंक न लागै वार ॥

सूर्योदय होते ही किसी दानी का प्रतिदिन मुख देखना चाहिये। कवि बांकीदास कहते हैं कि इससे तत्क्षण क्लेश, भय और भूख भग जाते हैं।

आंव भलो ऊगो उठै, गहरो छाह गरट्ट ।
पावै फळ मीठा पही, वह आवै इण वट्ट ॥

यहा आम का वृक्ष कितना अच्छा लगा है। इसकी बहुत ही सघन छाया है। जो पथिक इस मार्ग से निकलता है उसे खाने को मीठे फल भी मिलते हैं।

प्राण जितै जग आपणो, प्राण जितै तन पाक ।
प्राण प्रयाण कियाँ पछै, ह्वै नर नाम हलाक ॥

जब तक इस शरीर मे प्राण है तब तक यह ससार अपना है और जब तक प्राण हैं तब तक यह शरीर पवित्र है। शरीर मे से प्राणो के निकल जाने के पश्चात मनुष्य का नाम भी नष्ट हो जाता है।

दान सरीखो दूसरो, ओखद नह अद्भूत ।
हेक थकी सारा हरै, महारोग मजबूत ॥

दान जैसी अदभुत अन्य कोई औषधि नही है। यह अकेली औषधि अनेक महारोगो को दूर कर देती है।

बित जिम बाटै तिम वधै, आ ही रीत अनाद ।
कूवा हूँ जळ काढियाँ, सीरा वधै सवाद ॥

ज्यो ज्यो वित्त का दान दिया जाता है त्यो त्यो वह बढता है। यह अनादि काल से चली आने वाली रीति है। कुवे से पानी निकालने पर पानी के अन्तर्वाही स्रोत और भी मधुर हो जाते हैं।

सुदतारा भावै सदा, सुदतारा री गल्ल ।
अदतारा भावै नही, सुणिया ह्वै उर सल्ल ॥

अच्छे दानी व्यक्ति सदैव अच्छे लगते है उनकी कहानियाँ भी अच्छी लगती है। अदानी लोग अच्छे नही लगते उनकी चर्चाय सुनने पर हृदय मे दुख होता है।

भूका पोसणहार यूँ ज्यूँ जग कमलाकत ।
नागा ढाकणहार इम, जिम तरवरा वसत ॥

जिस प्रकार लक्ष्मीपति ससार का पोषण करते हैं उसी प्रकार दानी भी भूखे व्यक्तियो का पोषण करते हैं। जिस प्रकार वसन्त नग्न वृक्षो को नये पत्तो से ढकता है उसी प्रकार दानी भी नगे लोगो को वस्त्र-दान से ढकते हैं।

[दातार बावनी]

सबळा खळ सू साधिया, निबळ जाय खळ नास।
मूंसो मेळ मजार कर, बचियो विपत विलास॥

शक्तिशाली शत्रु से सन्धि करने पर निर्बल का विनाश हो जाता है। बिल्ली से यदि चूहा सन्धि करता है तो क्या विपत्ति से बच सकता है ?

बैरी रो वेसास, कीधौ मन छोडे कपट।
वसिया नेडा वास, अवस हुवा वे-सास वे॥

जो लोग मन से कपट का त्याग कर शत्रु का विश्वास करते हैं और उनके पडोस मे रहने लगते हैं उनको अवश्य ही प्राणो से हाथ धोना पडता है।

बैरी कटक नाग विष, बीछू कैवच बाघ।
या सूं दूर रहतडा, दूर रहे दुख दाघ॥

शत्रु, काँटे सर्प, विष, बिच्छू सिंह आदि से दूर रहने पर मनुष्य से दुख और सन्ताप भी दूर रहते है।

बैरी बैर न वीसरै, बिना हियै ही वक।
राहु ग्रहे राकेस नू, नभ सिर मात्र निसक॥

कविराजा बाकीदास कहते हैं कि चाहे हृदय न भी हो तो भी शत्रु शत्रुता को कभी नही भूलता। राहू [इसके केवल मस्तक है, हृदय नही] अपने सिर मात्र से चन्द्रमा को निर्भय होकर ग्रस लेता है।

वाता वैर विसावणा, सैणा तोडै नेह ।
हामै विष पीणा हरष, आछा काम न एह ॥

वातो ही वातो मे सज्जनो म शत्रुता हो जाती है और स्नेह टूट जाता है । यह तो हँसी हँसी मे जहर पीने के समान हुआ । यह काम अच्छे नही है ।

अळगो ही उर मैं वमै, नीद न आवरण देह ।
ससिवदनी रौ साहिवं, कै दोयण असनेह ॥

दूर रहता हुआ भी हृदय मे ही वसा रहता है और नीद नही आ पाती । या तो यह चन्द्रमुखी का प्रियतम है अथवा कोई स्नेह हीन शत्रु ।

रीझै साभळ राग, भीजै रस नह भैचकै ।
नैडो आवै नाग, पकडीजै छावड पडै ॥

सर्प राग को सुन कर रीझ जाता है । तनिक भी भय नही करता, उसमे डूब जाता है । सपेरे के बिलकुल निकट आ जाता है और परिणाम यह होता है कि छबडी मे बन्द कर दिया जाता है ।

हिरण रहै थिर होय, बीणा सुर सूं बाकला ।
जिण कारण सू जोय, पारधिया पानै पडै ॥

बांकीदास कहते हैं कि हरिण बीण के मधुर स्वरो को सुन कर खडे रह जाते हैं । देख, इसी कारण से उन्हे शिकारियो के जाल मे फँसना पडता है ।

अै बक मूनी ऊजळा, मीठा बोला मोर । —
पूछो सफरी पनग नूं, क्रत ऊघडै कठोर ॥

ये मुनियो की तरह उज्ज्वल दिखने वाले वगुले और मीठे बोलने वाले मोर कैसे हैं ? यह मछली और सांप से पूछो [बगुला मछली को खा जाता है और मोर सांप को खा जाता है] इनके निर्दय कर्मों का उद्घाटन वे करेंगे।

[नीति मंजरी से]

गिनका रो जे नर ग्रहे, कबरी डङ करेण।
खाग ग्रहे किमि दळण खळ, तेज विहीणा तेण ॥

जो लोग अपने हाथ मे वेश्या की वेणी धारण करते हैं, वे तेजहीन शत्रुओ का विनाश करने के लिये अपने हाथ मे तलवार कैसे ग्रहण कर सकते हैं ?

हसियो जग आसक हुए, वसियो खोवण वीत।
रसियो नागी राड नूं, फसियो होण फजीत ॥

किसी वेश्या का प्रेमी होने पर उस व्यक्ति पर ससार हँसता है, अपना धन खोने के लिये वह उसके घर पर रहने लगता है। ऐसा रसिक निर्लज्ज वेश्या के जाल में अपमानित होने के लिये फँस जाता है।

घणी दिराडे घूमरा, गवराडे नह गूढ।
भाडे वाली भाम नूं, माथे चाढे मूढ ॥

स्वय ही घूमर नृत्य करवाता है, सबके सामने गाने गवाता है। मूर्ख व्यक्ति वेश्या [किराये की] को इस प्रकार अपने सिर चढाता है।

पातर वाली प्रीत, मीठी लागे प्रथम मन।
मंद हुआ धन मीत, हुएं विरस कडवी हुवे ॥

वेश्या की प्रीति पहले तो मन को बहुत ही मधुर लगती है। हे मित्र ! धन चुक जाने पर वही शत्रु हो जाती है और कडवी लगने लगती है।

अग घणां आलगियो, अधर घणारी ऍठ।
नर मूरख जागे नहीं, पातरिया री पैंठ॥

अनेक पुरुषो द्वारा जूठे किये गये वेश्या के अधरो को वह चूमता है, उसके अगो का गाढालिंगन करता है। मूर्ख पुरुष यह नही जानता कि वेश्याओ की क्या प्रतीति है ?

बादल काला बरसिया, अत जल माला आरा।
काम लगो चाळा करण, मतवाळा रग माग॥

मेघमाला यहां घिर आई काले बादल बरसने लगे। देखो, कामदेव अपना खेल करने लगा। हे मतवाले प्रियतम ! अब तुम भी आ जाओ।

दीधो धन लीधो दलद, कीधो गात कुढग।
गनका मू ँ राखे गुसट, रसिया तोनूं रग॥

तुमने अपना सारा धन देकर बदले मे दारिद्र ले लिया। अपने शरीर को भी बेढगा बना लिया। वेश्या के साथ बैठ कर तुम गोष्टी करते हो। हे रसिक, तुझे धन्य है।

सुजस बिगड बिगडी सभा, आहुट गई उमग।
गनका मू राखे गुसट, रसिया तोनूं रग॥

तेरा यश नष्ट हो गया तेरी मित्र-मण्डली भी उजड गई। तेरी उमग भी अदृश्य हो गई। वेश्या के यहां तू गोष्टियां करता है। हे रसिक, तुझे धन्यवाद है।

[वँमक वार्ता से]

मावड़िया अंग मोलियां, नाजुक अंग निराट ।
गुपत रहे ऊमर गमै, खाय न निजबल खाट ॥

स्त्री स्वभाव वाले पुरुष [मावडिया] अंगों से पुरुषार्थहीन और अत्यन्त नाजुक होते है। घर में छिपे रह कर वे अपनी आयु खोते है। वे घर की सम्पत्ति खाते है, स्वयं अपने पुरुषार्थ से कुछ पैदा नही करते।

नैणा रा सोगन करै, भै माने सुण भूत ।
रामत ढूलां री रमै, रांडोली रा पूत ॥

नेत्रों की सौगन्ध खाते रहते है। भूत के नाम से ही भयभीत हो जाते हैं। वेश्या के ऐसे पुत्र गुड़ियों से खेलते रहते है।

कर मुख दे लचकाय कर, झमक चलै सुर झीण ।
मावड़ियो महिला तणी, मारे रोज मलीण ॥

मुख पर हाथ रख कर, कमर को लचका कर और ठमके के साथ चलते हैं। उनकी आवाज भी बहुत ही बारीक होती है। ये स्त्री स्वभाव वाले पुरुष महलों के भीतर ही अपनी प्रशंसा करते रहते हैं।

कुझकोई चुंमन करै, गनका हंदो गाल ।
कुझकोई खावण करै, मावड़ियां री माल ॥

जिस प्रकार एक वेश्या के गाल का कोई भी चुम्बन कर लेता है, उसी प्रकार ऐसे स्त्री-स्वभाव वाले पुरुष का माल कोई भी खाना चाहता है।

मावडियाँ मन माझलो, सौ गाडा भर सीत।
की ऊँचो माथो करे, पडिया रहे पलीत ॥

स्त्री-स्वभाव वाले कायर पुरुष के मन में सौ गाडियों भरी ठण्ड [अथवा लज्जा] निवास करती है। कौन उनके मस्तक को ऊँचा करे ? वे तो हीन भाव से पीडित पडे रहते हैं अथवा भूतों की तरह छिपे रहते हैं।

ज्यारी जीभ न ऊपडै, सेणा माही सेत।
वारा कर किम ऊपडै, खला घिरया बिच खेत ॥

जिनकी जीभ तक मित्र-मण्डली मे साफ-साफ नही चलती अर्थात् जो लज्जा के कारण मित्रो मे भी बोल नही पाते, रणक्षेत्र मे शत्रुओ से घिरने पर उनके हाथ कैसे चलेंगे ?

मुख नह नूर उछाह मन, बळ नह कध विसेप।
मावडिया लोयण मही, रज हदी नह रेख ॥

न तो मुख पर तेज है, न मन मे उत्साह है, न कधो मे विशेष बल है। स्त्री-स्वभाव वाले कायर पुरुषो की दृष्टि पृथ्वी मे गडी रहती है। उनके नेत्रो मे वीरता की एक रेखा भी दिखाई नही देती।

जाय नवोढा सासरे, आसू नाख उसास।
मावडिया जावे मुहम, इण विध हुवे उदास ॥

जिस प्रकार नव-विवाहिता रोती हुई और निश्वास छोडती ~ई अपने ससुराल जाती है, युद्ध भूमि मे जाते समय स्त्री-स्वभाव ले कायर पुरुष भी इसी प्रकार उदास हो जाते हैं।

तरुणी री पोसाक त्रण, जीवन मूली जांण।
कलह समैं राखे वनै, मावड़ियो विण माण॥

स्त्री-स्वभाव वाले कायर पुरुष अपना स्वाभिमान छोड़ कर और उन्हें अपने प्राण समझ कर स्त्रियों द्वारा पहनी जाने वाली तीन पोशाकें (साड़ी, लहंगा और कांचली) युद्ध के समय सदैव अपने साथ रखते हैं।

[मावड़िया मिजाज से]

कृपण संतोष करै नहीं, सौ मण जाणैं सेर।
कर टाकी ले काटही, सुपना माहि सुमेर॥

कंजूस व्यक्ति मे सन्तोष नहीं होता। वह सौ मन को केवल एक सेर समझता है। वह स्वप्न में सुमेरु पर्वत [जो सोने का माना जाता है] को देख कर उसे अपने हाथ में छैनी लेकर काटने लगता है।

डोढी पड़दो देखिये, सूमा घरै सिवाय।
भीतर जम किंकर विना, जीव मात्र नहं जाय॥

यो तो द्वार पर सभी के पर्दा रहता है किन्तु कंजूस के घर पर विशेष तौर पर। उसके घर मे यमदूतों के अतिरिक्त अन्य कोई भी प्राणी नही घुस सकता।

देखीजे सूमा द्रुमा, इणी प्रकृत प्रसंग।
जड़ माया घर मे जिते, रहे प्रफुल्लित अंग॥

कृपण और वृक्ष की प्रकृति में निश्चय ही समानता होती है [कृपण का धन भी धरती मे गड़ा हुआ रहता है और वृक्ष की जड़ें भी धरती के भीतर ही रहती है]। जहाँ तक वृक्ष की जड़ें और कृपण की सम्पत्ति धरती मे रहती है, तब तक दोनों के अंग प्रफुल्लित रहते हैं।

वामी फिर वामी कृपण, जादूगर नर चार।
रात दिवस पटदे रहै, पडदा सू हिज प्यार॥

वाभुक वाममार्गी कंजूस और जादूगर ये चार पुरुष रात-दिन पर्दे मे ही रहते हैं इन्हे पर्दे से ममता होती है।

कीडो कण पावे नही, अदतारा घर आय।
और घरा सू आणियो, जिको गमाडे जाय॥

कजूस के घर मे यदि कीडा चला जाय तो उसे वहाँ अन्न का एक दाना भी नही मिले। दूसरों के घरो से जो अन्न वह लेकर आता है उसे भी उस कंजूस के घर वह खो देता है।

नार नपुँसक रा घरा, अदतारे घर अत्थ।
भागहीण भोगे नही, देखे परसै हत्थ॥

जिस प्रकार नपुंसक की स्त्री का जीवन व्यर्थ है उसी प्रकार कंजूस के घर मे धन का होना भी महत्व नही रखता। जिस प्रकार भाग्यहीन नपुंसक अपनी पत्नी को भोग नही सकता उसी प्रकार कंजूस अपने धन को नही भोग सकता। केवल देखता है और उसे हाथ से छूकर ही प्रसन्न होता है।

जस अपजस जाचक पढै, मागे चाल बिलूब।
नही चिढै उत्तर न दै, घाम धूम वो सूम॥

याचक उस कजूस के अंगरखे का पल्ला पकड कर उसके यश-अपयश का गुणगान करते है और उससे दान की याचना करते हैं। वह न तो नाराज ही होता है और न किसी प्रकार का उत्तर ही देता है। वह पूरा कजूस है।

[कृपण दर्पण से]

आलस तज निज गरज अब, भज त्रुभयण भूपाल ।
पिए निरंतर आय पय, बावा काल बिडाल ॥

अब अपने स्वार्थ और आलस्य को त्याग कर त्रिभुवनपति का भजन कर। बांकीदास कहते हैं कि देखो काल रूपी बिल्ली निरन्तर आयु रूपी दूध का पान कर रही है।

तट गगा तपियो नही, नह जपियो नरसीह ।
जड ते आरण धमण जिम, दम गमिया बहु दीह ॥

न तो तुमने गगा तट की कभी तपस्या की और न नृसिंह के नाम का जप किया। हे मूर्ख ! तुमने तो सारी उम्र लुहार की धौंकनी की भाँति अपने स्वांस यो ही खोये।

पग-पग जम डाका पडै, बाँका धार विवेक ।
हुत भुक बिच जल खाख ह्वै, उडणो है दिन एक ॥

बांकीदास कहते हैं कि कदम कदम पर यमराज डाका डाल रहा है इसलिये विवेक धारण करो। एक दिन अग्नि मे जल कर मिट्टी होकर उड जाना पडेगा।

केस जरा धोवण करे, धोला अत ही धोय ।
अतक राऐ ऐंचता, हात न मैला होय ॥

वृद्धावस्था काले केशो को धोकर अत्यन्त श्वेत कर देती है। इसलिए कालरूपी राजा जब उन्हे खेंचता है तो उसके हाथ तनिक भी काले नही होते।

अटकाई नह आयबल, आई जरा अगूढ ।
आसी जद तू अटकसी, मान किसी बिध मूढ ॥

आयु का बल देखो उसे रोक नही सका। आखिर वृद्धावस्था प्रकट होकर आ गई। मृत्यु जब आयेगी तब तू अटक जायेगा। हे मूर्ख! तू किसी प्रकार अब समझ जा।

अध कूप ससार ओ, भीतर काल भुजग।
वाछे सुख नर ऐय बस, सबल अविद्या सग ॥

यह ससार अन्धेरा कुआ है। इसमे कालरूपी सर्प निवास करता है। प्रबल अज्ञान के साथ इसमे रहता है और ससार के सुखो की इच्छा करता है।

ताजदार बैठो तखत, रज मे लोटे रक।
गिणे दुनानू हेक गत, निरदय काळ निमक ॥

सम्राट तख्त पर बैठा है और एक गरीब बेचारा मिट्टी मे पडा हुआ है किन्तु निर्भय और क्रूर काल दो दोनो को समान ही समझता है अर्थात् दोनो को ही मार देता है।

पथ असेंदे पूगणो, अळगो घणो अकथ्थ।
व्हे विण जाण्यो हालणो, सबल(जा)विण सथ्थ ॥

अज्ञात मार्ग पर पहुँचना है, वह बहुत दूर है और अकथनीय भी है। बिना उसे जाने हुये चलना है। देखो, सभल जाओ, मार्ग मे किसी का साथ भी नही है।

काचो जळ भरियो कळस, माफल माले मीन।
जाणे निज चिर जीवणो, लोका आ मत लीन ॥

यह शरीर पानी से भरे हुये मिट्टी के कच्चे कलस की भाँति है जिसमे आत्मारूपी मछली खेलती है। ससार के लोगो ने यह समझ रखा है कि हम चिरजीवी हैं।

हिल-मिल सब सू हालणो, ग्रहणो आतम ग्यान ।
दुनिया मे दस दीहडा, माद्ध तू मिभमान ॥

सभी से प्रीतिपूर्वक रहना चाहिये । आत्मज्ञान ग्रहण करना चाहिये । हे मनुष्य ! इस ससार मे तू केवल दस दिनो का मेहमान है ।

रे थोडी ऊमर रही, काय न छोड़े कूड !
हिय अधा तूँ नाख हव, धधा ऊपर धूड ॥

अब तेरी उम्र थोडी ही रही है तू झूठ बोलना क्यो नही छोडता । हे हृदय के अन्धे ! सासारिक कामो को अब तो छोड दे ।

सर सूके नह सचरे, वांका पही विहग ।
किरारे चाले सग कुण, सब स्वारथ रे सग ॥

जब तालाब का पानी सूख जाता है तो न तो कोई पथिक वहाँ आता है और न कोई पक्षी ही । सब स्वार्थ के मित्र हैं । कौन किसके साथ चलता है ?

['मोह मर्दन' से]

ठग कामेती ठेठ गुर, चुगल न कीजे सेण !
चोर न कीजे पाहरू, ब्रहसपती रा वेण ॥

कभी किसी ठग को अपना कामदार [निजी सचिव] नही बनाना चाहिये । न कभी अपने किसी मित्र की चुगली करनी चाहिये । किसी चोर को पहरेदार नही बनाना चाहिये । ये वचन बृहस्पति के हैं ।

चरचा करता चुगल सू, प्रकत हुवे परतत ।
चुगली काना सुणण सू, मैलो ह्वै गुर मत ॥

किसी चुगलखोर से वार्तालाप करने पर मानवी प्रवृत्ति परतत्र हो जाती है। अपने कानो से किसी की चुगली सुनने पर गुरुमत्र अपवित्र हो जाता है।

रोळ बिगाडे राज नूं, मोळ बिगाडे माल।
सने-सने सिरदार री, चुगल बिगाडे चाल॥

उपद्रव राज्य व्यवस्था को ग्रस्त व्यस्त कर देते है। वस्तुओ का सस्तापन व्यापारिक असबाव को विगाड देता है। इसी प्रकार चुगली से धीमे-धीमे राजा का आचरण भी भ्रष्ट हो जाता है।

नरक समो दुख-थल नही, वाडव समो न ताप।
लोभ समो ओगण नही, चुगल समो न पाप॥

नरक के समान कोई दुख का स्थान नही होता और वाडवाग्नि के समान कोई गर्मी नही होती। इसी प्रकार लोभ के समान कोई अवगुण नही होता और चुगली के समान कोई अन्य पापकर्म नही होता।

पनग लडो कीडा पडो, सडो झडो दुख सग।
जग चुगला री जीभडी, वायस भखो विहग॥

चुगलखोर की जीभ को सांप डस जाय, उसमे कीडे पडें। नाना प्रकार के दुख पाकर वह सड जाय और अन्त मे गिर पडे। उसे कौवे खा जायें।

बुरी चुगल मुख मे बसे, आछी रो नँह अग।
माखी बैसे स्वान मुख, भूल न बैसे भ्रग॥

चुगलखोर के मुंह मे सदैव बुराई ही निवास करती है, भूलकर भी अच्छाई नही रहती। जिस प्रकार कुत्ते के मुंह पर मक्खी बैठती है, कभी भूलकर भी भँवरा नही बैठता।

चुगली उगली चीज है, चुगली है चरकीन ।
काव हुवै कै कूतरो, इणरे रस आधीन ॥

चुगली वमन के समान है, विष्ठा के समान है। चुगली में रस लेने वाला या तो कौवा होता है या कुत्ता ।

कागां केरी चांच ज्यूं, चुगलां केरी जीह ।
विसटा ज्यूं परची बुरी, चूंथे सवही दीह ॥

कौवों की चोंच की तरह चुगलखोरों की जीभ दूसरी की बुराई रूपी विष्ठा को सारे दिन गूंधती रहती है।

ऊंडा जळ सूके अवस, नीलो वन जळ जाय ।
चुगल तणां पगफेर सूं, बसती ऊजड थाय ॥

चुगलखोर के चरण जहां पड जाते हैं वहां की बस्ती उजड़ जाती है, गहरे कुओं का पानी सूख जाता है और हरे-भरे जंगल जल जाते हैं।

चुगली करतां चुगल रा, जुग होटड़ा जुडंत ।
मल नोखण जांणे मिलेः दोय ठीकरा दंत ॥

चुगली करने के लिये चुगलखोर के दोनों होठ इस प्रकार मिलते हैं जिस प्रकार विष्ठा फेंकने के लिये मिट्टी के बर्तन के दो टुकड़े मिलते हैं। ['चुगल मुख चपेटिका' से]

जस अपजस देखै नहीं, देखै स्वारथ दाय ।
जिम-तिम कर वणियो रहै, वणियो तेण कहाय ॥

वह यश-अपयश कभी नहीं देखता, सदैव अपना स्वार्थ देखता है और स्वार्थ ही उसे अच्छा लगता है। किसी प्रकार उसका अस्तित्व बना रहे बस यही उसका प्रयत्न रहता है। इसीलिये उसे वणिक कहते हैं।

कै पूजै श्रीकंत नू, कै पूजै अरिहंत।
बाका मत विस्वास कर, ए सह वणक असत॥

यह या तो विष्णु की पूजा करते है या उसकी पूजा करते है जो इनके शत्रुओ को मारते हैं। बाँकीदास कहते है कि इनका कभी विश्वास मत करो, ये सारे वणिक दुष्ट होते हैं।

दरसावै जग नूं दया, पाप उठावे पोट।
हित मे चित मे हास मे, खत मे मत मे खोट॥

ससार को तो दिखाता है कि जैसे उसके समान अन्य कोई दयावान नही है किन्तु उसके सिर पर सदैव पापो की गठरी रहती है। उसके चित्त मे, उसकी शुभकामना मे, उसके खातो मे, विचारो मे और हाथो मे अर्थात उसके पूरे कार्य-कलाप मे बुराई और बेईमानी भरी रहती है।

नाणो गुर नाणौं इसट, नाणो राणो राव।
नाणा बिन प्यारो न को, साहा जात सुभाव॥

पैसा ही उसका गुरु है, पैसा ही उसका आराध्य है, पैसा ही उसका राजा है। पैसे के अतिरिक्त उसे अन्य कोई अच्छा नही लगता। यह साहुकार जाति का स्वभाव है।

जोडै नाणो जगत मे, कर-कर करडा काम।
विवनो जीपे वाणियो, नाणा रो सुण नाम॥

अनेक कठिन और दुष्कर कार्य करके वह ससार मे धन एकत्र करता है। पैसे का नाम सुन कर मरा हुआ वणिक जीवित हो उठता है।

बीच बजारा वाणिया, भाजे सरजे भाव।
पावा रा लेखा करै, दावा रा दरयाव॥

वणिक बाजार के बीच वस्तुओं के भाव बनाता है और बिगाड़ता है। यों तो वह एक-एक पाव [चार छटांक का एक तोल] का हिसाब रखता है किन्तु यों मुकदमों और झगड़ों का समुद्र है।

वणियाणी जामा तणो, भरम न गमणो भूल ।
नटियो कोडी ही न दे, मरणो करे कबूल ॥

वणिक पुत्र के हृदय का रहस्य जानना बहुत ही कठिन है। यदि वह एक बार मना करदे तो फिर चाहे उसके प्राण चले जाये किन्तु एक कोड़ी भी नहीं देता।

['वैस वार्ता' से]

सठता धूरतता सहित, छंद रचे मद छाय ।
निपट लियां निरलज्जता, कुकवी जिको कहाय ॥

जो कवि दुष्टता, धूर्तता और अहंकार में डूबकर छन्द-रचना करता है और जिसमें भयंकर निर्लज्जता होती है उसे कुकवि कहा जाता है।

रूपक कुकवि रसण सूं, बिगड़े यूं रसवंत ।
ज्यूं विसफोटक रोग वस, वप सोभा विगडंत ॥

कुकवि की रचना से रसयुक्त कविता इस प्रकार बिगड़ जाती है जिस प्रकार चेचक से सारे शरीर का सौन्दर्य विकृत हो जाता है।

शठ मंडल श्रोता हुवै, वक्ता कुकवि वणंत ।
भूंकण लागो भूंकवा, जाण जमा दीपंत ॥

कुकवि जब अपनी कविता का पाठ करता है तो उसका श्रोता-मण्डल दुष्टों का ही होता है। और जैसे यमराज के दूतों को देख कर कुत्ते भोंकने लगते हैं उसी प्रकार यह उन श्रोताओं को देख कर भोंकता है।

हंसा बगला हाल सूं, जिम अंतरो जणाय ।
कवत सुकवियां कुकवियां, भेद प्रकट इण भाय ।।

जिस प्रकार हस और बगुले की चाल से उन दोनों का अंतर स्पष्ट हो जाता है उसी प्रकार सुकवि और कुकवि का अन्तर उनकी कविता द्वारा हो जाता है।

['कुकवि बत्तीसी' से]

हेक विदर पैदा हुवै, अगणत भिळियां अंस ।
विदरां री संगत बुरी, विदरां रे नंह बंस ।।

अनेक पुरुषों के अश से एक दासीपुत्र पैदा होता है। इन दासीपुत्रों की कोई वंश-परम्परा नही होती। इनकी संगति बड़ी घातक होती है।

बतळायो बिगड़े विदर, और दियां इळकाब ।
वाट चालवण विदर नूं, कुतको बडी किताब ।।

इसे यदि कोई पदवी दो और इससे योंही बात करो तो यह दासीपुत्र बडा क्रोधित होता है। इसे ठीक रास्ते पर चलाने के लिये डंडा ही महान पुस्तक है।

विदर गपां रा बादळा, विदर विवेक विहीण ।
विदर छांह निरखे बहै, अलबेला अकुलीण ।।

दासीपुत्र गप्पों के बादल के समान होते हैं, उनमें विवेक नही होता। ये जब चलते हैं तो अपनी छांह को देखते हुए चलते हैं। ये बडे मस्त किन्तु कुलहीन होते हैं।

कर पारो काचै कळश, जळ राखियो न जात ।
नव नहचे ठहरे नही, विदर उदर में वात ।।

जिस प्रकार हाथ में पारा और कच्चे घडे में पानी नही ठहर सकता उसी प्रकार यह निश्चय है कि दासीपुत्र के पेट में कोई नई बात ठहर नही सकती।

कठण रीत रजपूत कुळ, खाग कमाई खाय ।
ओर कमाई आदरै, गोलो झगडै गाय ॥

क्षत्रिय कुल की यह रीति अत्यन्त कठिन है कि तलवार के बल पर आजीविका अर्जन करनी पडती है और इस प्रकार की आजीविका को ही सम्मान दिया जाता है किन्तु दासी पुत्र तो युद्ध के समय गाय बन जाता है ।

बीछू वानर व्याल विष, गरदभ गडक गोल ।
ए अळगा इज राखणा, ओ उपदेस अमोल ॥

बिच्छू बन्दर, सर्प, जहर, गधा, कुत्ता और दासीपुत्र—इन सबको दूर रखना चाहिये । यह एक अमूल्य उपदेश है ।

['विदुर–बत्तीसी' से]

नीसरणी लागै नही, लागै नही सुरग ।
लड नहि लीधो जाय ओ, दीधो जाय दुरग ॥

न तो किसी नसेनी के द्वारा इस किले मे पहुँचा जा सकता है और न किसी सुरग के द्वारा । युद्ध के द्वारा भी इस किले पर आधिपत्य नही किया जा सकता । यह किला तो दिया जाता है ।

पर गढ लेणा रोप पग, अरि सिर देणा तोड ।
धरा हूत नहि धोपणो, खूदालमा आ खोड ॥

अपने पैरो को जमा कर अर्थात अपने सकल्प को सुदृढ कर और शत्रुओ के मस्तको का भजन कर ही दूसरो के किले को लिया जा सकता है । पृथ्वी के सम्बन्ध मे वे कभी सन्तुष्ट नही होते—वीर पुरुषो में यह एक कमी होती है ।

उठै सोर झाळा अनळ, आभ धुआ अधियार ।
ओळा जिम गोळा पडै, मेघा कटक मभार ॥

अग्नि की लपटें उठ रही हैं, आकाश मे धुएँ के कारण अन्धकार छा गया है। म्लेच्छो की सेना मे ओलो की तरह गोले पड रहे हैं।

सूनी थाहर सिंघ री, जाय सके नहिं कोय।
सिंह खडा थह सिंहरी, क्यो न भयकर होय॥

सिंह की गुफा सूनी है किन्तु भय के कारण उसमे कोई नही जा सकता। और जब सिंह स्वय गुफा मे हो तो फिर वह गुफा भयकर क्यो न हो।

अमला खोवा वाजिया, मचै भडा मनुवार।
जागडिया दूहा दियै, सिंधू राग मझार॥

हथेलियाँ भर-भर अमल लिया जा रहा है—वीरो की मनुहारें हो रही हैं। जागड [एक गायक जाति जो वीर रागिनी के द्वारा वीरो को युद्ध के लिये उत्साहित करती है] वीर भाव के दोहे और सिन्धुराग [वीर भावना का गीत] सुना रहे हैं।

समर तजण सू सौगुणो, दुरग तजण रो दोप।
मरद दुरग जाता मरै, मिळै जिका नू मोप॥

युद्ध भूमि को भयभीत होकर त्यागने की अपेक्षा दुर्ग को त्यागना अधिक दोपपूर्ण है। जो पुरुप दुर्ग की रक्षा मे प्राण देते हैं उन्हें मोक्ष प्राप्त होता है।

रोपी अकबर राड, कोट झडै नह कागरे।
पटके हाथळ सीह, पण बादळ ह्वै न विगाड॥

अकबर ने महाराणा प्रताप से युद्ध ठान रखा है किन्तु राणा प्रताप का वह बाल भी बाँका नही कर पा रहा है [महाराणा के सुदृढ दुर्ग को वह कुछ भी क्षति नही पहुँचा पा रहा है]।

जैसे सिंह बादल की गर्जना को सुनकर अपने पंजे जोर-जोर से मार रहा है किन्तु वह बादल का कुछ भी नुकसान नही कर पाता।

['भुरजाल भूषण' से]

अत सीतल उतराद सूं, ऐथ बह्योडो आय।
जल सुरसरि अघ जालतो, करे विलंब न काय ।।

उत्तर दिशा से बहता हुआ यह गगा का शीतल पानी यहाँ आता है। पापों को जलाने में यह तनिक भी विलम्ब नही करता।

गंगा जिण थानक गई, सुणियो तीरथ सोय।
तीरथ होय न गंग विण, गुल बिन चोथ न होय ।।

जिस स्थान पर गंगा पहुँच गई, वही तीर्थस्थल वन गया। जिस प्रकार गुड के बिना चौथ का त्यौहार नही हो सकता, उसी प्रकार गंगा के विना कोई स्थल तीर्थ नही वन सकता।

अधम ! न जा तीरथ अवर, तू जा सुरसरि तीर।
दीरघ लहसी तीन द्रग, सुजल पखाल सरीर ।।

हे पापी ! तू किसी अन्य तीर्थस्थल को मत जा, तू गंगा के किनारे जा। वहाँ पवित्र जल से तू अपने शरीर का प्रक्षालन कर। तुझे दीर्घकाल शिवलोक की प्राप्ति होगी।

प्राणी तूं डूबो अखत, मोहनदी रे मांहि।
देव नदी में डूबियो, नख पग हुंदो नांहि ।।

हे प्राणी ! तू पूर्णरूप से मोहनदी में डूब गया है। अपने चरणों के नखों को तूने गगा में कभी नही डुवोया।

मंदायण तो भाग, पग देतां पुरपां तणा।
भूतल जागे भाग, अघ-भागे खिण एक मे ।।

हे मदाकिनी ! तेरे पथ पर चरण रखते ही इस पृथ्वी पर पुरुषो के भाग्य जग जाते है और एक ही क्षण मे सारे पाप नष्ट हो जाते है।

पावन तू हरि पाय करि, कै तौ करि हरि पाय।
है पावन ओ मूझ हिय, मात सदेह मिटाय।।

मेरे हृदय मे एक सन्देह है, वह यह कि तूने विष्णु के चरण-नखो को पवित्र किया है अथवा तू उनके नखो से पवित्र बनी है। हे गगा माता ! मेरा यह हृदय बडा अपवित्र है—इस सन्देह को तू दूर कर दे।

मोताहल रहसी नही, हैवर हीर चमीर।
जेहलिया जातां जुगां, बातां रहसी बीर।।

न ये मोती रहेंगे और न ये श्रेष्ठ घोडे और सोना ही बचेंगे। हे जेहा भाराणी ! युग बीतने पर केवल बाते शेष रहेगी।

अत थारो जस ऊजळो, जेहल दिस-दिस जोय।
हिमकर तै घट वध हुवै, हिमगिरि गलजल होय।।

हे जेहल ! यश अत्यन्त उज्ज्ल है और देख, दिशा-दिशा मे बढ रहा है। चन्द्रमा भी घटता-बढता रहता है, हिमगिरि भी पिघलता रहता है किन्तु तेरे यश मे किसी प्रकार की कमी नही आती।

जस देसतर जावही रूपतर बलहत।
काळतर न कलीजणो, जेहा तू जाणत।।

रूप और शक्ति का विनाश हो जाता है किन्तु यश देश-देशान्तरो मे व्याप्त हो जाता है। जेहल ! तू जानता है कि कालान्तर मे भी-उसका लोप नही होता।

राज भगीरथ राम, जुजठळ जस जरण-जरण जपै ।
कीधां मोटा काम, नाम रहै जेहल नरां ॥

राजा भगीरथ, राम और युधिष्ठिर की कीर्ति का प्रत्येक व्यक्ति जाप करता है। महान् कार्य करने पर हे जेहल! मनुष्यों का नाम अमर हो जाता है।

वित बिलसरण री वार, नर सठ वित बिलसै नही ।
जावै बीत जियार, जेहल पछतावै जिके ॥

सम्पत्ति के भोगने के समय मूर्ख लोग सम्पत्ति को भोगते नही। जीवन यों ही बीत जाता है और हे जेहल! फिर वे लोग पश्चात्ताप करते हैं।

['जेहल जस जड़ाव' से]

कंथ म राखो कायरां, करै नजर जो कोड ।
दोयरण दळ बीटोदियां, छळ कर जावै छोड ॥

हे पतिदेव! ऐसे कायरों को जो बुरी दृष्टि से देखते हैं, पास नही रखना चाहिये। जब शत्रु-दल घेरा डालता है तो ये धोखा देकर भाग जाते हैं।

कंथ म राखो कटक में, नर कायर निरलज्ज ।
काळा वळदां काढ़जे, कांकल जीपरण कज्ज ॥

हे पति! निर्लज्ज कायर को सेना में मत रखो। युद्ध में विजयी होने के लिये उन्हें काले बैलों पर बैठा कर और काला मुँह कर निकाल दो।

भेप लियां सूं भगत नह, ह्वै नह गहरणो हूर ।
पोथी सूं पंडित नहीं, ससतर सूं नह सूर ॥

केवल वेष धारण करने से कोई भक्त नही बन जाता और न केवल आभूषणो के धारण करने से कोई स्त्री अप्सरा बन जाती है। ग्रंथों से कोई पण्डित नही बन जाता और शस्त्रों के धारण मात्र से कोई शूरवीर नही हो जाता।

अदतां केरी अत्थ ज्यूं, कायर री किरमाळ।
कोड प्रकारां कोस सूं, नह पावै नीकाल।।

कंजूस के धन की भांति ही कायर की तलवार व्यर्थ होती है। चाहे अनेक प्रकार से प्रयत्न करो किन्तु जैसे कंजूस के कोष से एक पैसा नही निकल सकता, उसी प्रकार म्यान से कायर की तलवार नही निकल सकती।

बादल ज्यूं सुरधनुष बिण, तिलक बिना दुज पूत।
बनो न सोभै मोड़ बिन, घाव बिना रजपूत।।

बादल इन्द्रधनुष के बिना शोभा नही पाते, तिलक के बिना ब्राह्मण शोभा नही पाता, दूल्हा सेहरे के बिना शोभा नही पाता और क्षत्रिय घाव बिना शोभा नही पाता।

पैलो खोसै पाघडी, हमे दिखालूं दन्त।
कायर मोनै क्यो कहे, सुद्ध सुभावां संत।।

शत्रु मेरे सिर की पगडी छीन लेते हैं मैं दांत दिखाकर हँसने लगता हूं [अर्थात् मुझे तनिक भी क्रोध नही आता]। मुझे कायर क्यो कहते हो, मैं तो स्वभाव से विशुद्ध सन्त हूं।

['कायर बावनी' से]

सित कुसुमां गूंथी सुखद, वेणी सहियां व्रंद।
नागणि जाणे नीसरी, सांपहि खीर समंद।।
सांपड़ि खीरसंमद, दुरंग सँवारिया।
धारा केण कलिंद, तनूंजा धारिया।।

भापरा उपमाँ और मनोरथ भेळिया ।
मझ आटी मखतूल क मोती मेळिया ।।

सखिवृन्द ने राधिका की वेणी श्वेत पुष्पों से गूँथी है। वह ऐसी प्रतीत होती है मानो नागिन क्षीर समुद्र में स्नान कर बाहर निकली हो। क्षीर समुद्र में स्नान करने से वह दुरंगी हो गई है। एक रंग गंगा का [श्वेत] है और दूसरा यमुना [काला] का है। जिस प्रकार भाषा में उपमा और अर्थ मिलकर उसकी शोभा बढ़ाते हैं, उसी प्रकार वेणी में काला रेशम और मोती मिल गये हैं और वेणी की शोभा बढ़ा रहे हैं।

काळी भमरावळि कळी, भूंहाँ वाँकड़ियाँह ।
कमल प्रभात विकासिया, इसड़ी आँखड़ियाँह ।।
इसड़ी आँखड़ियाँह किया म्रग वारणाँ ।
सर मनमथ गा हारि क अंजरा सारणाँ ।।
खूबी न रही काय खतंगां खंजना ।
नेही हूं मुनिराज, विसारि निरंजना ।।

बाँकी भौंहें ऐसी प्रतीत हो रही हैं मानो कली पर भ्रमरपंक्ति बैठी हो। आँखें ऐसी हैं मानो प्रभातकालीन कमल खिला हो। इन आँखों पर मृग के नेत्र भी न्योछावर किये जा सकते हैं। इनमें काजल डालने पर कामदेव के बाण भी इनके समक्ष परास्त हो जाते हैं। खंजन पक्षी के नेत्रों और जहरीले बाण में अब कोई विशेषता शेष नहीं रही। इन नेत्रों की सुन्दरता पर मुनिराज भी मुग्ध हो गये और वे ईश्वर की उपासना करना भूल गये।

['राधिका नख-सिख वर्णन' से]

हुवा जसोधन पुरस जे, इळ वड मन अवदात ।
ज्यांरी कही पुराण में, व्यास तपोधन वात ।।

पृथ्वी पर जो यशस्वी, महान बुद्धि वाले और उज्ज्वल-चरित्र पुरुष हुये, उनका तपोधन वेदव्यासजी ने पुराणो मे उल्लेख किया है।

जस न हुवै धन जोडियां, धन दीधा जस होय ।
वीसळदे वीकम तणो, जग मे विवरो जोय ॥

धन एकत्र करने से यशप्राप्ति नही होती, धन के दान से यशप्राप्ति होती है। वीसलदेव और विक्रमादित्य जैसे ससार मे अन्य राजा नही मिलते।

जस गाडा भरियो जुडै, जग सो करो जतन्न ।
ओ आभरणां आभरण, रतना सिरै रतन्न ॥

ससार मे आकर ऐसा प्रयत्न करो कि गाडी भरा हुआ यश प्राप्त हो। यह (यश) आभूषणो का आभूषण है और रत्नो का शिरोमणि रत्न है।

['सुजस छत्तीसी' से]

तरु सतोष तणेह, नर छाया बैठा नही।
फळकळती किरणेह, वांका भटकै लोभ बन ॥

सन्तोष रूपी वृक्ष की छाया मे मनुष्य कभी नही बैठता। सूर्य की तेज किरणो मे वह लोभ के बन मे भटकता रहता है।

मानवियां मन वन मही, लागी लालच लाय ।
वांका इण सतोष विण, बीजै केण बुझाय ॥

मनुष्यो के मन रूपी वन मे लोभ की अग्नि लगी हुई है। वांकीदास कहते हैं कि सन्तोष के बिना इसे कौन बुझा सकता है।

ज्यारै खाख बिछावणो, ओढण नू आकास ।
ब्रह्म पोप सतोष बित, पूरण सुख त्यां पास ॥

मिट्टी जिनका बिछौना है, ओढ़ने के लिये आकाश है। ब्रह्म की जिन्होंने शरण ले रखी है और सन्तोष ही जिनका धन है। बस पूर्ण सुख केवल उन्हे ही प्राप्त है।

['सन्तोष बावनी' से]

जग में नर हळका जिकै, बोलै हळका बोल।
आप तणै मुख आपरो, मूरख करदे मोल॥

जो व्यक्ति नीच हैं वे ही नीच बात कहते है। वे बोलकर अपने मुख से ही अपना मूल्यांकन कर देते हैं।

चंदण लपटै मिणधरण, रीझै साँभल राग।
पिण मुख माँझल जहर तैं, निंदवियो जग नाग॥

सर्प चन्दन-वृक्ष से लिपटे रहते हैं और राग को सुनकर मुग्ध हो जाते हैं। किन्तु उनके मुँह में जहर होने के कारण संसार सर्प की निन्दा करता है।

गाळ न ऊठै गूमड़ो, ऊठै झाळ अकरथ।
जिणनूं सज्जन वैण जळ, सांत करण समरत्थ॥

गाली से फोड़ा तो नही होता किन्तु हृदय में अकथनीय जलन अवश्य होती है। इस जलन को सज्जन का वचन रूपी जल ही शान्त करने में समर्थ होता है।

['वचन विवेक पच्चीसी' से]

लोयण चंचल श्रवण लग, लाँबा वेणी डंड।
महकै सहज सुबास वप, किर लायो श्रीखंड॥

नेत्र कानों तक फैले हुये हैं। वेणी अत्यन्त लम्बी है। सारा शरीर सहज सुगन्ध से सुवासित है, मानो चन्दन का लेप किया हो।

आंखड़ियां अरिणयालिया, काजल रेख किंयाह ।
वीमलियां भावंदिया, लाज सनेह लियाह ।।

तीखे नेत्र काजल रेखा से सज्जित हैं, उनमे स्नेह और लज्जा है । रस-विह्वल व्यक्तियो को वे मोहित कर रहे हैं ।

नवा सुरंगा ओढिया, चंगा भीणा चीर ।
भरहो हेम वरन्निया, दूध वरन्ना नीर ।।

नवीन सुरंगे परिधान और अत्यन्त भीणा ओढणा धारण किये हुये स्वर्ण की सी कान्ति वाली सुन्दरियां दूध जैसा उज्ज्वल पानी भर रही है ।

हेम कळस कुच जुग हिए, नीर कलस सिर लेइ ।
पणघट हूँता वाहडै, कळस दुहे कर देइ ।।

वक्ष स्थल पर स्वर्ण कलश के समान दो उरोज हैं । सिर पर पानी से भरा हुआ कलश है । अपने दोनो हाथो से उस कलश को थाभे हुये सुन्दरियां पनघट से लौट रही है ।



महाकवि सूर्यमल्ल मिश्रण : जीवनी

राजस्थानी भाषा और साहित्य के गौरव को बढाने वाले महान् कवियों में महाकवि सूर्यमल्ल मिश्रण का स्थान बहुत ही महत्वपूर्ण है। ये अनेक विषयों, शास्त्रों और विज्ञान के ज्ञाता-पण्डित थे। संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश, अरबी-फारसी पर इनका गहरा अधिकार था। राजस्थानी तो इनकी मातृभाषा थी। शृङ्गार और भक्ति का काव्य भी इन्होंने लिखा किन्तु इतिहास और वीर रस इनके प्रिय विषय रहे है। वीर रस की कविता लिखने में सिद्धहस्त होने के कारण इस महाकवि को 'वीर रस की मूर्ति' भी कहा जाता है। 'वंश-भास्कर' कवि द्वारा रचित एक विशाल महाकाव्य है। यह संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश, डिंगल आदि मिश्र-भाषाओं में लिखा गया है, इसलिये अनेक स्थानों पर बहुत ही कठिन हो गया है। कवि की वीर रस की अन्य रचनायें अत्यन्त सरल डिंगल भाषा में लिखी हुई है। अपने वीर-काव्य द्वारा सूर्यमल्लजी ने गुलाम राष्ट्र के सुषुप्त कर्त्तव्य-भ्रष्ट और दुर्बल समाज में नव-जागरण का शंख फूंका। इनकी 'वीर-सतसई' के एक-एक दोहे में देश और जाति के गौरव और अपनी पवित्र धरती माता की रक्षा के लिए महाकाल से भिड़ जाने की प्रेरणा भरी हुई है। वे एक सच्चे देशभक्त और स्वाभिमानी कवि थे। राजस्थानी साहित्य के इतिहास मे तो वे अमर है ही, राजस्थान के लोकमानस मे भी वे आज तक प्रतिष्ठित हैं।

महाकवि सूर्यमल्ल का जन्म चारण जाति की मिश्रण शाखा में, बूंदी के राज्य-कवि चंडीदानजी के घर हुआ था। इनके पितामह और प्रपितामह भी बूंदी नरेश के यहाँ आश्रित थे। इनकी जन्म और मृत्यु-तिथि को लेकर विद्वानों में कुछ मतभेद था किन्तु इनके पिता स्वयं चण्डीदानजी द्वारा तैयार की गई इनकी जन्म-कुण्डली के उपलब्ध हो जाने के कारण जन्मतिथि संबंधी

विवाद अब नही रहा। अब सभी विद्वानो ने यह स्वीकार कर लिया है कि इनका जन्म कार्तिक कृष्णा १ सवत् १८७२ को हुआ था। इस प्रकार मृत्यु तिथि के सम्बन्ध मे भी कुछ ठोस ऐतिहासिक प्रमाण मिल गये हैं और अब यह निश्चित है कि इनकी मृत्यु आषाढ कृष्णा ११, सवत् १६२५ को हुई थी।

हम ऊपर लिख आये हैं कि सूर्यमल्लजी का जन्म बूँदी राज-कवि के परिवार मे हुआ था। इनके पिता चण्डीदानजी स्वय प्रसिद्ध कवि और विद्वान थे। इनकी माता भवाना भी विदुषी थी। अपने महाकाव्य वशभास्कर मे कवि ने अपने चरित्र और व्यक्तित्व पर अपने माता-पिता का प्रभाव स्वीकार किया है। यद्यपि माता-पिता इन्हे बहुत ही लाड-प्यार करते थे किन्तु ज्ञानार्जन और सद्वृत्तियो के ग्रहण के सम्बन्ध मे इनके पिता कठोरता भी बरतते थे। अपने पिता से इन्होंने अनेक विद्यायें प्राप्त की। ये बहुत ही कुशाग्र-बुद्धि और प्रतिभा सम्पन्न बालक थे। पाच वर्ष की आयु में इनका विद्यारम्भ हुआ। कहते है तीन दिन मे ही इन्होने अमर-कोश कठस्थ कर लिया था। केवल सात वर्ष की अवस्था मे ही काव्य रचना करने लगे थे। एक किवदन्ती के अनुसार केवल १० वर्ष की आयु मे ही इन्होने 'रामरजाट' नामक ग्रथ की रचना कर दी थी।

सूर्यमल्लजी के यो अनेक गुरु थे क्योकि इन्होंने विविध गुरुओ से विद्यायें प्राप्त की थी। सगीत किसी एक गुरु से सीखा था, तो ज्योतिष किसी दूसरे से। किन्तु दादू पथी साधु श्री स्वरूपदासजी महाराज और इनके ही समवयस्क आशानन्दजी के नाम इनके गुरुओ मे मुख्य रूप से लिये जाते हैं। अपने महाकाव्य वश भास्कर मे इन दोनो गुरुओ को कवि ने भक्ति-पूर्वक वन्दना की है। श्री स्वरूपदासजी महाराज और सूर्यमल्लजी का पत्र-व्यवहार भी होता था, जो बूँदी के सग्रहालय मे सुरक्षित है। सूर्यमल्लजी की असाधारण प्रतिभा के कारण स्वय स्वरूपदासजी इनका बहुत ही आदर करते थे।

सूर्यमल्लजी ने कुल छ विवाह किये थे। इनके कोई सन्तान

नहीं थी इसीलिये मुरारीदानजी को गोद लिया था। मुरारीदानजी अपने पिता के अनुकूल पण्डित और कवि सिद्ध हुए। कहते हैं, अपूर्ण वंश-भास्कर को अपने पिता की मृत्यु के पश्चात् उन्होंने ही पूरा किया था।

महाकवि का परिचय-क्षेत्र बहुत विशाल था। साधु-सन्तों, राजा-महाराजाओं के अतिरिक्त कई पण्डित और कवि इनके मित्र थे। रामनाथजी कविया इनके अभिन्न मित्र थे।

सूर्यमल्लजी से अनेक लोगों ने काव्य-शिक्षा प्राप्त की थी। इनके अष्ट-शिष्य प्रसिद्ध हैं। वीर विनोद के रचयिता श्री गणेश-पुरीजी इनमें प्रसिद्ध हैं।

महाकवि के जीवन से सम्बद्ध मुख्य घटनायें और किंवदन्तियाँ :—

महाकवि की थूणपुर (कोटा) वाली पत्नी का देहान्त हो गया था। शवयात्रा में सूर्यमल्लजी भी थे। मार्ग में इनके कलावन्त मित्र बहादुरजी मिल गये। तंबूरा उनके हाथ में था किन्तु यह गाने का अवसर तो था नहीं। आग्रह करने पर भी जब बहादुरजी ने कोई पद नहीं गाया तो सूर्यमल्लजी ने तंबूरा अपने हाथ में ले लिया और अर्थी के आगे-आगे चलते हुए तन्मय होकर गाने लगे—

'लाडीजी घूँघटड़ो खोलो म्हांने चाव छै'

लोग याद दिलाते थे कि समय बहुत हो रहा है किन्तु वे कहते जरा ठहरो, फिर यह समय थोड़े ही आयेगा। अपने अनुज जयलाल के टोकने पर वे रुके और तब पत्नी का दाह-संस्कार हुआ। यह घटना कवि की मस्ती और सुख-दुख में एकरस रहने की प्रवृत्ति की ओर संकेत करती है।

सूर्यमल्लजी की संगीत में अगाध रुचि थी। एक गायिका के संगीत पर मुग्ध होकर उन्होंने खजाने से इनाम देने के लिये खजांची को पत्र लिख दिया। इनाम की रकम बहुत अधिक थी। खजांची ने देने से इन्कार कर दिया। गायिका ने आकर कवि

से शिकायत की। इस बार कवि ने इनाम की रकम को दुगुना कर दिया और खजांची के पास उस गायिका को फिर भेजा। खजाची ने यह बात दरबार को सूचित की। दरबार ने तत्काल आज्ञा दी कि 'महाकवि की चिट्ठी को लौटाने का तुम्हारा साहस कैसे हुआ ? जो रकम पहले लिखी थी वह तो खजाने से दे दो और उतनी ही रकम तुम अपने पास से दो।'

यह घटना कवि के व्यक्तित्व के प्रभाव की सूचक है। स्वयं दरबार इनके आदेश का आदर करते थे।

सूर्यमल्लजी को शराब पीने की भी आदत थी। काव्य-रचना भी वे मद्यपान करके ही किया करते थे। कहते हैं 'वंश-भास्कर' महाकाव्य की रचना कवि ने मद्य पीकर ही की थी। हाँ, इतनी बात अवश्य थी कि वे शराब पीकर बदहोश नहीं होते थे। अपने मित्र व प्रशंसक रतलाम नरेश महाराजा बलवन्तसिंह का जब देहान्त हुआ तब सूर्यमल्लजी बूँदी में ही थे। इन्होंने अपने मित्र से कहा, "बलवन्तसिंह जैसे वदान्य और गुण-ग्राहक राजा को घर पर ही जलाजलि देना उचित नहीं, किसी तालाब पर जाकर यह कार्य करना चाहिए।" इनके आदेशानुसार सभी लोग तालाब के किनारे गये। वहाँ पहुंच कर कवि ने फिर कहा, "ऐसे राजा को बिना कविता किये ही जलाजलि देना उचित नहीं और मद्य पिये बिना अच्छी कविता नहीं हो सकती।" नौकर को उसी समय मद लाने के लिये भेजा गया। कहते हैं दो-तीन प्याले पीकर कवि ने निम्नांकित दो छन्द बनाकर तब जलाजलि दी—

काव्यमनि वारिधि बिपत्ति के में बूडे सब,
बिन अवलंब गुन गौरव गह्यो नहीं।
पवन प्रलै के दीप दीपित दह्यो जो देह,
चित्त हू लह्यो जो दुःख कवहूँ चह्यो नहीं॥
रत्नपुरराज बलवंत के त्रिदिव जात,
समन सुलीतन पै जावत सह्यो नहीं।

आज अवनी पै अभिरूपन के आलय मे,
मालव मिहिर बिन मालव रह्यो नही ॥१॥
ग्रस्त दव दारिद गे त्रस्त भो बुधन वृन्द,
अस्त भो प्रकाश हा हा ! द्वादश रविन को ।
काव्यमय रत्न हा हा ! ठा ठा भये ककर से,
हा हा ! पुहवी मे भयो पात सुपविन को ॥
रत्नपुर राज बलवत के त्रिदिव जात,
स्वात संग हा हा ! भो हुतासन हविन को ।
रत्नाकर फूटो हाय ! ग्रंथनिधि खूटो हाय,
कल्पतरु तूटो हाय ! कामद कविन को ॥२॥

राजपुरुषो मे ही नही, राजरानियाँ और ठकुरानियो में भी सूर्यमल्लजी बहुत ही आदर प्राप्त करते थे। एक बार भणाय की रानी ने सूर्यमल्लजी के पास कुछ कीमती चूनडियाँ दासी के हाथ पसन्द कराने के लिये भिजवाई और कहलवाया कि इनकी कीमत भी करें। रानीजी का विचार एक बहुमूल्य चूनडी महाकवि की पत्नी को भेंट करने का था। महाकवि ने उत्तर मे कहलवाया कि कीमत तो मैं तब करूँगा जब आप राजाजी के देवलोक होने पर इन चूनडियो को ओढकर सती होंगी। रानी ने उनको सभाल कर रख लिया। राजाजी के देवलोक होने पर उन्ही चूनडियो में से एक चूनडी पहन कर वे सती हुईं। सती होने से पूर्व उन्होंने सूर्यमल्लजी को कहलवाया कि मैंने तो आपकी आज्ञा का पालन कर लिया है, अब चूनडी की कीमत आँकने का वचन आप निभाइये। कहते हैं 'सती चरित्र' ग्रथ की रचना कवि ने इसी घटना से प्रेरित होकर की थी।

ये सगीत के परम शौकीन थे। जब कभी अन्य कामो से ऊब जाते तब अपना सितार लेकर हवेली के निकट स्थित इमली के पेड पर चढ जाते और तन्मय होकर सितार बजाने लगते। एक पद वे विशेष रूप से बजाया करते थे।

'मोसरए थारो मनडो कहूँ न दीसै।
खट भाखा भाखत इए वेला व्यग धुनी नह दीसै ।।'

काव्य-रचना करने मे इनकी गति बहुत तीव्र रहती थी। इसीलिये चार लेखक सदैव इनके पास ही रहा करते थे। मद्यपान के पश्चात् अथवा जब कभी इन्हे काव्य-रचना की प्रेरणा होती तब ये केवल 'हूँ' का सकेत करते थे और बोलना प्रारम्भ कर देते थे। लेखक उसी क्षए अपना कार्य शुरू कर देते थे।

व्यक्तित्व सूर्यमल्लजी का व्यक्तित्व बडा प्रभावशाली था। उनका शरीर वीरोचित विशाल था, नेत्र दीर्घ थे और सदैव लाल रहते थे, बडी बडी मूँछे थी, वे दाढी रखते थे जो सदैव सवारी हुई रहती थी एक हाथ मे सदैव तलवार रखते थे। उनकी इस प्रकार की आकृति से ऐसा प्रतीत होता था कि साक्षात् वीर रस ने ही मानो उनमे अवतार लिया है। क्रोध और करुणा दोनो उनमे विराजमान थे। चरित्र और आचरण मे सन्तुलन का उनमे अभाव था किन्तु सत्यवादिता के लिये यह महाकवि इतिहास और साहित्य मे सदैव स्मरण किया जायेगा। अपने महाकाव्य 'वश भास्कर' मे अपनी इस सत्यवादिता की उन्होने सर्वत्र रक्षा की है। कवि-कर्म और धर्म से प्रेरित होकर इन्होने अपने आश्रयदाता राजवश की निन्दा भी की है। सम्मान, वैभव और धन के लोभ ने इन्हे सत्य-कथन से कभी विमुख नही किया। इस अडिग सत्यवादिता के कारण ही वश भास्कर का निर्माण इन्हे बन्द करना पडा।

सूर्यमल्लजी मे कबीर का सा अक्खडपन था। वे जिसे सत्य समझते थे और जो कुछ अनुभव करते थे उसे बेधडक होकर बेलाग भाषा मे प्रकट कर देते थे। क्षत्रिय के आदर्शो के प्रति उनमे अनन्त और अखण्ड श्रद्धा थी। देश का गौरव और जाति का अभिमान उनमे कूट-कूट कर भरा हुआ था।

सूर्यमल्लजी की मृत्यु पर उनके अनेक मित्रो, प्रशसको और कवियो ने मार्मिक मरसिये लिखे। इनके पढने पर कवि का सम्पूर्ण व्यक्तित्व और उनकी लोकप्रियता स्पष्ट हो जाती है। अलवर के

कवि रामनाथजी कविया ने जो मरसिये कहे थे उनके कुछ अश नीचे दिये जा रहे है—

मिलतां कासी मांह, कवि पिंडता सोभा करी ।
चरचा देवां चाहि, सुरग बुलायो सूजड़ो ।।१।।
करती अब कविराज, मीसण नित थारो मना ।
सुरसत दुचित समाज, सुखवी मरतां सूजड़ा ।।२।।
देस कविंद दूजाह, रहिया सो आछां रहो ।
सामँद गुण सूजाह, तो मरतां बिनस्यो तदिन ।।३।।
जिणसूं ऊजल जात, दिस-दिस सारं दीसती ।
रैंणव थारी रात, सुकवि न जनम्यो सूजडा ।।४।।
जल कायम जस जोग, ये सब साथै ऊठिया ।
भामी वीरत भोग, सुरग सिधातां सूजडा ।।५।।

डिंगल के एक अन्य प्रसिद्ध कवि राजा भवानीदानजी महियारिया (कोटा) के मरसिये भी बहुत ही मार्मिक हैं—

कायब रचना तै करी, आतम बुद्धि उदार ।
जेम सिकंदर फूतली, नीरधि पंथ निवार ।।१।।
भाण इख्र रस घट भयो, यूंछ भयो कवि चंद ।
नर बाणी सूजा करी, वर बाणी सुर वंद ।।२।।
हायन एक हजार में, आदि हुवौ नहिं अंत ।
सुरसत बाणी सूजड़ा, पड़ी पदारथ पंत ।।३।।

सूर्यमल्लजी के ग्रन्थ सूर्यमल्लजी द्वारा रचित ग्रथो को लेकर विद्वानों में आज भी मतभेद है। डॉ० मोतीलालजी मेनारिया के अनुसार इन्होंने केवल चार ग्रन्थ—वंश-भास्कर, बलवंत-विलास, छंदोमयूख और वीर सतसई ही लिखे थे।

किन्तु इनके द्वारा रचित कुछ और ग्रथो का पता भी लगा है। बगाल हिन्दी मण्डल, कलकत्ता सग्रहालय मे इनकी एक और कृति 'राम-रजाट' सग्रहीत है। 'सती रासो' की चर्चा हम पीछे कर चुके हैं। कहते हैं कि इसकी एक प्रति अलवर मे मौजूद है। इधर-उधर बिखरी हुई इस जानकारी के आधार पर अब यह माना जाने लगा है कि सूर्यमल्लजी ने अपने सहस्रो स्फुट डिंगल गीतो और छन्दो के अतिरिक्त ६ ग्रथ बनाये थे। वे इस प्रकार हैं—वश-भास्कर, बलवद्विलास, छदोमयूख, वीर-सतसई, रामरजाट, सतीरासो और धातुरूपावली। इन ग्रथो मे से धातुरूपावली और छन्दोमयूख के सम्बन्ध मे आज भी निश्चित जानकारी उपलब्ध नही है।

वंश-भास्कर—यह ग्रथ सूर्यमल्लजी की एक विशाल काव्य-रचना है। कवि के आश्रयदाता बूँदी नरेश राव राजा रामसिंह ने महाभारत सुनकर यह इच्छा प्रकट की थी कि चडासि चौहान-वश का विस्तारपूर्वक वर्णन करने वाला एक ऐसा ही ग्रथ लोकभाषा मे लिखा जाना चाहिए। इस ग्रथ की रचना का भार सूर्यमल्लजी को सौंपा गया। यह पूरा ग्रथ २५०० पृष्ठो मे है और टीका सहित यह ४३६८ पृष्ठो में छपा है। मुख्य रूप से इस महाकाव्य मे बूँदी के राजवश और इतिहास का वर्णन है किन्तु कवि ने राजस्थान के इतिहास की जानकारी भी दी है। यह अनेक छन्दो मे लिखा हुआ है। अलकारो की शोभा और विविधता भी इस ग्रथ में है—इससे कवि के प्रगाढ काव्यशास्त्र-ज्ञान का पता लगता है। सूर्यमल्लजी अनेक भाषाओ के पण्डित थे—यह बात भी इस ग्रथ की भाषाओ से सिद्ध हो जाती है। यह पूरा ग्रथ 'मयूखो' मे विभाजित है। कवि ने गद्य का प्रयोग भी स्थान-स्थान पर किया है। राज-वंशो की वशावलियो और अन्य ऐतिहासिक घटनाओं के अरुचिकर वर्णनों के कारण यह ग्रथ अनेक स्थलो पर नीरस हो गया है। इसलिये अनेक विद्वान् इसे काव्य से अधिक एक इतिहास-ग्रथ ही मानते हैं।

इस ग्रथ की रचना सवत् १८९० ई मे हुई बताते हैं। एक यह भी मान्यता है कि अपने स्वामी रामसिहजी से किसी कारण नाराज हो जाने से कवि ने यह ग्रथ अधूरा ही छोड दिया था।

कवि की मृत्यु के पश्चात् उनके दत्तक पुत्र मुरारीदानजी ने इसे पूरा किया था।

बलवद्विलास—इस ग्रंथ की रचना संवत् १६१२ में हुई थी। भणाय(अजमेर) ठिकाने के राजा बलवन्तसिंह और सूर्यमल्लजी गहरे मित्र थे। राजा साहब की इच्छा थी कि लोक-भाषा में राजनीति शास्त्र का एक सरल और सुबोध काव्य-ग्रंथ तैयार किया जाय। सूर्यमल्लजी ने इस आदेश का पालन करते हुए ही इस ग्रंथ की रचना की थी। ग्रंथ के अंत में कवि ने इस तथ्य का उल्लेख किया है। राजनीति के गहन सिद्धान्तों के अतिरिक्त कोष, वाहन, शत्रु, मित्र दण्ड आदि विषयों पर भी ग्रंथकर्ता ने प्रकाश डाला है। इस ग्रंथ की भाषा भी वंश-भास्कर के समान ब्रज, प्राकृत और डिंगल मिश्रित है।

राम रंजाट—इस ग्रंथ की रचना वि०सं० १८८२ में हुई थी उस समय कवि बालक ही थे। बूंदी नरेश रामसिंहजी अच्छे शिकारी थे। विजयादशमी पर वे शिकार खेला करते थे। इस ग्रंथ का विषय रावराजा द्वारा खेला गया उक्त शिकार है। सरल डिंगल भाषा में रचित यह एक छोटा सा ग्रन्थ है। काव्यकला की दृष्टि से यह कवि की एक सुन्दर रचना है।

वीर सतसई—सूर्यमल्लजी की कवि-कीर्ति का स्तम्भ विद्वान वंश-भास्कर को मानते हैं। शायद यह मान्यता वंश-भास्कर की विशालता, विपुल इतिहास सामग्री, उनके छन्द और भाषा ज्ञान को लेकर बनी है। किन्तु सत्य यह है कि साहित्य-जगत् और लोक मानस में कीर्ति और महत्वपूर्ण स्थान सूर्यमल्लजी को वीर सतसई से ही प्राप्त हुआ है और इसीलिये इसकी विषय वस्तु भी वीर, वीरांगना, वीरता के विविध प्रसंग, स्वामिभक्ति, मृत्युपर्व का महत्व, रणकौशल, युद्ध-वर्णन आदि हैं।

कवि की इच्छा पूरे ७०० दोहों की सतसई तैयार करने की थी। किन्तु जिस प्रकार कुछ कारणों से वंश-भास्कर भी कवि ने अधूरा रख दिया, उसी प्रकार यह ग्रन्थ भी वे पूरा नहीं कर सके।

इस ग्रथ मे कवि द्वारा रचित केवल २८८ दोहे हैं। वीर सतसई की कुछ प्रतियो मे कुछ अधिक दोहे भी उपलब्ध होते हैं किन्तु वे अन्य कवियो द्वारा रचित हैं।

वीर सतसई के निर्माण के पीछे कुछ ऐतिहासिक परिस्थितियाँ प्रेरक रही है। कुछ विद्वानो की मान्यता है कि इस महान् ग्रथ का निर्माण कवि ने बूँदी के राजपरिवार के एक प्रतिद्वन्दी वीर भोमसिंह की वीरता की प्रशसा मे किया था। वह वीर, सेना के अभाव मे रावराजाजी से अन्त तक टक्कर नही ले सका और पराजित हो गया। कवि ने वीर सतसई इसीलिए अपूर्ण रख दी। इस मान्यता के ऐतिहासिक प्रमाण प्राप्त नही होते। यह एक प्रवाद मात्र है। वास्तव मे इस ग्रन्थ के निर्माण के पीछे गदरकालीन भारत की राजनैतिक परिस्थितियाँ ही कार्यरत रही हैं। अग्रेजो की शक्ति और सत्ता राजस्थान मे भी ताण्डव नृत्य करने लगी थी। कवि चाहता था कि राजस्थान की बिखरी हुई राजपूत-शाकतें एक होकर विदेशियो का मुकाबला करें। सूर्यमल्लजी ने उमरावो, राजा-महाराजाओ से प्रान्त की इस तत्कालीन दुरावस्था को लेकर जो पत्र-व्यवहार किया था वह इस तथ्य का साक्षात् प्रमाण है। वे काव्य शक्ति के द्वारा देश के सोये स्वाभिमान और वीरत्व को जगाना चाहते थे। इस कृति मे ऐसे बहुत से दोहे है जो उस समय की सामाजिक राजनैतिक और ऐतिहासिक परिस्थितियो का प्रामाणिक उल्लेख करते हैं। वि० स० १९१४ मे कवि ने इस ग्रन्थ का निर्माण प्रारम्भ किया था। कवि के सम्पूर्ण प्रयत्नो, आशाओ और आकाक्षाओ के बावजूद भी देश सभल नही पाया। देश की पराजय ने कवि को भी निराश कर दिया और यह कृति अधूरी रह गई।

धरती के पावन प्रेम, देशभक्ति के उज्ज्वल आदर्श और जातीय गौरव की अडिग भावना की दृष्टि से तो यह कृति महान् है ही, काव्य-कला की दृष्टि से भी इसमें जो भाव-सौन्दर्य, व्यजना शक्ति तथा लाक्षणिक-प्रभाव हैं वह कवि की कीर्ति को अमरत्व प्रदान कर रहे है।

सतीरासो—यह सूर्यमल्लजी की एक छोटी सी काव्य-कृति है। इसमें कवि ने सती का गुण-गान किया है। भणाय (अजमेर) की रानी अपने पति के देवलोक होने पर सती हुई थी। सूर्यमल्लजी ने यह वचन दिया था कि रानी के सती होने पर वे उन्हें अपने काव्य द्वारा अमर कर देंगे। उसमें मुख्य रूप से रानी के सती होने के प्रसंग का वर्णन है। यह ग्रन्थ अप्रकाशित है।

राजस्थानी साहित्य में सूर्यमल्लजी का स्थान सूर्यमल्लजी अद्वितीय प्रतिभा से सम्पन्न एक महान साहित्यकार थे। इतिहास और अन्य अनेक शास्त्रों में उनकी गति थी। वे अनेक भाषाओं के ज्ञाता-पण्डित थे। यद्यपि काव्य-कृतियों की संख्या की दृष्टि से वे साहित्य को अल्प योग ही दे सके किन्तु अपनी दो महान् कृतियों—वंश भास्कर और वीर-सतसई के द्वारा जो महान् निधि उन्होंने साहित्य को दी है, वह किसी भी अर्थ में अल्प नहीं है। वंश-भास्कर अपने काव्य के साथ आज इतिहास के संदर्भ-ग्रंथ का काम भी कर रहा है। यह महाकाव्य कवि की विलक्षण कवि - प्रतिभा का गौरव-स्तम्भ है। इसी प्रकार वीर सतसई में कवि के 'प्रचण्ड वीर रसावतार' के दर्शन होते हैं। चारण कवियों पर यह जो आक्षेप कभी-कभी लगाया जाता है कि उन्होंने केवल आश्रयदाता स्वामियों की अतिरेकपूर्ण प्रशंसा का काव्य ही लिखा है, वह सूर्यमल्लजी के प्रसंग में असत्य सिद्ध हो जाता है। वे अपनी सत्यवादिता, कटु उक्ति और निर्भीक अभिव्यक्ति के लिये प्रसिद्ध थे। वीर सतसई के एक-एक दोहे में कवि का यह व्यक्तित्व प्रकट हुआ है। कवि बिहारी के एक-एक दोहे में जो अर्थ-गौरव और काव्य-सौन्दर्य भरा है, सूर्यमल्लजी की वीर सतसई के भी एक-एक दोहे में वे गुण देखे जा सकते हैं। वीर सतसई के दोहों में तो एक विशेषता और भी है और वह है सरल होने के कारण जन-मानस को प्रभावित करने की उनकी शक्ति।

संक्षेप में, यह कह सकते है कि सूर्यमल्लजी का काव्य राजस्थानी साहित्य की अमूल्य सम्पत्ति है। सूर्यमल्लजी राजस्थानी के मूर्धन्य रससिद्ध कवि है। ●

सूर्यमल्ल मिश्रण : कविता

डाकी ठाकर रौ रिजक, ताखा रौ विष एक ।
गहळ मुवा ही उतरै, सुणिया सूर अनेक ।।

जिस प्रकार तक्षक नाग के काट खाने से उसका जहर मृत्यु पर ही उतरता है, उसी प्रकार उस जीवन-वृत्ति का नशा भी जो किसी जबरदस्त स्वामी से किसी वीर को प्राप्त होती है, स्वामी-हितार्थ उस वीर की मृत्यु के पश्चात् ही उतरता है। इन दोनो प्रकार के जहरो मे समानता है। अनेक शूर-वीरो के जीवन वृतो से यह बात प्रमाणित होती है।

सहणी सबरी हू सखी, दो उर उलटी दाह ।
दूध लजाणो पूत सम, बलय लजाणो नाह ।।

हे सखी ! जीवन मे मैं और सब बातें अथवा घटनायें सहन कर सकती हूँ किन्तु दो बातें सहन नही कर सकती। एक तो, यदि मेरे पति युद्ध मे पराजित होकर मेरे चूडे को लजा दें और दूसरी, यदि मेरा पुत्र दूध को अपमानित करदे। यह दोनो बाते मेरे हृदय को जलाने वाली हैं—मेरे लिये असह्य हैं।

जो खळ भग्गा तो सखी, मोताहळ सज थाळ ।
निज भग्गा तो नाह रौ, साथ न सूनो टाळ ।।

यदि हमारे शत्रु युद्धभूमि से भयभीत होकर भग गये हैं तो हे सखी ! मोतियो का थाल सजा जिससे मैं अपने पतिदेव की आरती उतारूँ, इस विजय पर उनका अभिनन्दन करूँ। और यदि हमारी

सेना के लोग भाग चले हों तो फिर मेरे सती होने की तैयारी कर जिससे अपने पति का मैं स्वर्ग तक साथ करूँ।

समळी और निसंग भख, अंबक राह म जाह।
पण घण री किम पेखही, नयण विणट्टा नाह॥

हे चील! तू मेरे पति के नेत्रों को छोड़ दे। उनके अन्य अंगों को भले ही निर्भय होकर तू खाले। यदि तू उनके नेत्र निकाल कर खा जायेगी तो फिर वे अपनी पत्नी की उनके साथ ही सती होने की प्रतिज्ञा को किस प्रकार देखेंगे।

हूँ बलिहारी राणियां, थाळ बजाणें दीह।
बीर जमी रा जे जणें, सांकळ हीटा सीह॥

उन रानियों के पुत्रोत्सव पर मैं बलिहारी हूँ जो शृंखलाओं को तोड़ कर फेंक देने वाले सिंहों के समान पृथ्वी के वीरों को जन्म देती हैं।

खोया मैं घर में अवट, कायर जंबुक काम।
सीहां केहा देसड़ा, जेथ रहै सो धाम॥

मुझे भयंकर खेद है कि मैंने घर पर शृंगाल की भांति कायरता से ही अपनी अमूल्य आयु खो दी। सिंह किसी विशेष स्थान अथवा देश का मोह नहीं करते। वे जहाँ रहते हैं वही उनका घर अथवा देश हो जाता है।

धीरां-धीरां ठाकुरां, जमी न भागी जाय।
धणियां पग लूंबी धरा, अवखी ही घर आय॥

हे ठाकुरो! जरा धैर्य रखो। यह धरती कहीं दौड़ कर नहीं जा रही है। जिन वीर स्वामियों के पैरों से यह बँधी हुई है, उनसे छूटकर आपके घर यह मुश्किल से ही आयेगी। अर्थात् वीर-पुरुषों की धरती को छीन लेना हँसी-खेल नहीं है।

भूल न दीजै ठाकुरा, पावक माथै पाव।
राख रहीजै दाभिया, तिया धरीजै चाव ॥

एक वीरागना सती स्त्री कायरो को सम्बोधन कर कह रही है—हे ठाकुरो ! आप अग्नि पर पैर रखने की भूल न कर बैठना। आग से जलने पर पीछे राख ही बचती है। अग्नि पर तो वीरागनायें ही उमग के साथ पैर रखती हैं। अर्थात् अग्नि में अपने को जला कर सती होने में उन्हे तनिक भी भय नही लगता।

बाला चाल म वीसरे, मो थण जहर समाण।
रीत भरता ढील की, ऊठ थियो घमसाण ॥

वीर माता अपने आलस्य मे सोये हुए पुत्र को युद्ध के लिये उत्साहित कर रही है। हे पुत्र ! उठ। देख, घमासान युद्ध हो रहा है। यह मृत्युपर्व है। इस समय यह शिथिलता क्यो ? अपने कुल की रीति को मत भूल। कुल की रीति यह रही है कि ऐसे अवसरो पर आगे बढ बढ कर प्राण न्योछावर किये जाते हैं। मेरे स्तन का दूध जहर के समान है। तूने उसका पान किया है इसलिये यह अनिवार्य है कि तुम युद्ध मे जाकर प्राणोत्सर्ग करो।

नाग द्रमंका की पडै, नागण धर मचकाय।
इण रा भोगणहार जे, आज भिडाणा आय ॥

शेष नाग की पत्नी अपने पति से पूछ रही है—हे नाग ! आज धरती पर ये धमाके क्यो हो रहे हैं ?' शेषनाग उत्तर देते है-हे नागिन ! पृथ्वी को भोगने वाले वीर आज परस्पर आ भिडे हैं, पृथ्वी इसीलिये आज लचक रही है।

देख सखी होळी रमै, फौजां मे धव एक।
सागर मदर सारखो, डोहै अनड अनेक ॥

हे सखी ! देख मेरा अकेला पति, किस प्रकार सेनाओं के बीच होली खेल रहा है अर्थात् लाल रक्त की नदियाँ बहा रहा है। इस समय ऐसा प्रतीत होता है कि सागर-मथन में मन्दराचल पर्वत के समान वह अकेला ही अनेक अनम्र शत्रुओं को विलोडित कर रहा है।

घोड़ां घर ढालां पटल, भालां थंभ बणाय।
थे ठाकुर भोगें जमी, और किसौ अपणाय॥

जो वीर घोडे की पीठ को अपना घर, ढाल को छत और भालों को खम्भे बनाकर रहते हैं और पृथ्वी का उपभोग करते हैं, भला उनसे पृथ्वी को छीन कर और कौन अपने अधिकार में कर सकता है ?

कंकाणी चंपै चरण, गीधाणी सिर गाह।
मो विण सूती सेज री, रीत न छंडै नाह॥

हे सखी ! देख, मेरे पतिदेव मुझसे बिछुड कर आज युद्ध भूमि में सो रहे है, फिर भी वे सेज की रीति को नही छोडते। जिस प्रकार यहाँ रंगमहल में वे मुझसे अपने पैर और सिर दबवाते थे उसी प्रकार वहाँ कंक अपनी चोंच चला कर मानों उनके पैर दबा रही है और गिद्धनी उनका सिर दबा रही है।

कंत घरे किम आविया, तेगां रौ घण त्रास।
लहंगे मूज लुकीजियै, वैरी रो न विसास॥

कायर पति को सम्बोधन कर उसकी वीर पत्नी कह रही है—हे पतिदेव ! आप घर कैसे पधार आये ? क्या युद्ध-भूमि में तलवारों का इतना डर लगा ? शत्रु का कोई विश्वास नहीं। आइये ! मेरे लहंगे में छिप कर अपनी प्राण-रक्षा कीजिये।

रुण्ड हुवा जीवैं जिके, सदा न हेरैं साथ।
सीहां रै गळ सांकळै, वे भड़ घालैं हाथ॥

जो वीर कभी किसी साथ की प्रतीक्षा नहीं करते और सदैव निर्भय होकर अपने सिर को हथेली में लिये घूमते हैं, वे ही सिंहों के गलों में शृंखला डालने का साहस-कार्य कर सकते हैं।

रण हालीजे चारणां, चाहे अब लग चैन।
करै सुहड़ जिसड़ी कहो, बिध सो दूर बणै न ।।

हे चारणो ! चाहे आप अब तक मौज करते रहे किन्तु अब युद्ध-भूमि में चलो। दूर बैठ कर भला युद्ध-काव्य रचने का कार्य कैसे हो सकता है ?

रण खेती रजपूत री, बीर न भूलै बाल।
बारह बरसां बाप रो, लहै बैर लंकाल ।।

वीर बालक यह कभी नही भूलता कि यह युद्ध करना तो राजपूत का व्यवसाय (खेती) है। वह सिंह-शावक अपने पिता के बारह वर्षों के बैर का प्रतिशोध भी ले लेता है। अथवा अत्यन्त अल्प आयु में भी वह अपने पिता की शत्रुता का प्रतिकार लेना नहीं भूलता।

औरां की फळ जागियां, लड़णो जाग लंकाल।
गुड़ै धणी चा गाजणां, तो माथै अंबाल ।।

वीर पत्नी अपने पति को उद्बोधन देते हुए कह रही है— हे नर-केशरी ! उठो, जागो ! तुम्हें युद्ध करना है। स्वामी के ये नगारे तुम्हारे बलबूते पर ही तो गूँज रहे हैं। अन्य कायर सैनिकों के जगने से क्या लाभ होने वाला है।

अठै सुजस प्रभुता उठै, अवसर मरियां आय।
मरणो घर रै मांझियां, जम नरकां ले जाय ।।

जो लोग उचित अवसर पर वीरता के साथ अपना प्राण त्यागते हैं, उन्हें इस लोक में कीर्ति और परलोक में प्रभुत्व प्राप्त

होता है। किन्तु जो लोग अपने घर में सहज मृत्यु आने पर मरते हैं, उन्हे यमराज नरक में ले जाता है।

खाटी कुळ री खोवरणा, नेपै घर-घर नीद।
रसा क्वारी रावतां, बरती को ही वींद॥

अपने कुल की उपार्जित कीर्ति अथवा सम्पत्ति को खोने वालो ! देखो यहां घर-घर में आलसी लोग सोये पड़े हैं। यह पृथ्वी तो कुंवारी है। बिरले वीर ही इसका उपभोग करते है।

ग्रीव न मोड़े देखणो, करणो सत्रु सिराह।
परणंता धण पेखियो, ओछी ऊमर नाह॥

विवाह के समय ही पत्नी ने देख लिया कि मेरे पति की आयु थोडी ही है। कारण कि वे शत्रु की प्रशसा करते हैं और बिना गर्दन मोडे ही देखते है अर्थात् निडर सिंह की भांति सदैव अपनी गर्दन सीधी ही रखते है।

बळ खांधै जण-जण वहै, कस बांधै करवाळ।
परख भड़ां अर कायरां, त्रहत्रहियां त्रंबाळ॥

अपने कन्धों में दर्प से बल डालकर और कमर मे तलवार कस कर सभी चलते है। किन्तु कायरों की और सच्चे शूरवीरों की परीक्षा तो युद्ध के नगाडे बजने पर ही होती है।

विण मरियां विण जीतियां, धणी आवियां धाम।
पग-पग चूड़ी पाछटूं, जे रावत री जाम॥

हे पतिदेव ! यदि आप बिना विजय प्राप्त किए हुये अथवा युद्ध-भूमि में बिना प्राण त्यागे घर लौट आये तो सच मानिये, यदि मैं वीर पुत्री हूं तो अपने सुहाग की प्रतीक ये चूडियां पग-पग पर तोड़ कर फेंक दूंगी।

सीह न बाजो ठाकुराँ, दीन गुजारौ दीह।
हाथक पाडै हाथिया, सौ भड बाजै सीह॥

हे सरदारो ! अपने आपको सिंह मत कहो। तुम लोग गरीब और कायर की भाँति केवल अपने दिन गुजार रहे हो। वे वीर ही सिंह कहलाने के अधिकारी है जो अपने हाथ के प्रहार से हाथियो को गिरा देते है।

टोटै सरका भीतडा, घातै ऊपर घास।
वारीजै भड भूँपडा, अधपतियाँ आवास॥

गरीबी के कारण वीर लोग सरकण्डो की दीवारो और घास-फूस की छतो से बने झोपडो मे रहते हैं। किन्तु वीरो के इन झोपडो पर राजाओ के महलों को न्योछावर कर देना चाहिए।

साथण ढोल सुहावणौ, देणौ मो सह दाह।
उरसा खेती बीज धर, रजवट उलटी राह॥

राजपूत-धर्म की गति कुछ विपरीत होती है। इसमे खेती तो आकाश मे होती है और बीज धरती मे बोया जाता है। अर्थात् युद्धभूमि मे वीर जो वीरता दिखाते हैं उसका फल वीर को वीर-गति प्राप्त करने पर स्वर्ग के आनन्द-भोग के रूप मे मिलता है। इसलिये हे सखी ! जब मैं सती होऊँ तो बडा सुहावना ढोल बजवाना। मैं उस समय अपने पतिदेव के साथ स्वर्ग के आनन्द भोगने के लिये उनका सहगमन करूँगी।

धण आखै जागो धणी, हूँकळ कळळ हजार।
विण नूतारा पाहुणा, मिलण बुलावै बार॥

वीर पत्नी अपने पति से कह रही है 'हे पतिदेव ! अब तो जगिये। बिना निमत्रण के आये हुए हजारो मेहमान (अर्थात् शत्रु) बाहर दरवाजे पर घोर युद्ध की हुकारें कर रहे हैं और मिलने के लिये (अर्थात् युद्ध करने के लिये) आपको बाहर बुला रहे हैं।'

पग पाछा छातो धड़क, काळो पीळो दीह।
नैंण मिचे साम्हो सुणे, कवण हकाळै सीह॥

जब यह सूचना मिलते ही कि वह सिंह सामने ही आ रहा है, पैर डगमाने लगते हैं और पीछे पड़ने लगते हैं छाती में घबराहट हो जाती है आँखों में अंधियारा छा जाता है और आँखें भय से बन्द हो जाती हैं। तब ऐसे शूरवीर को चुनौती देने की हिम्मत कौन कर सकता है।

(यह एक सच्चे वीर के पराक्रम और आतंक का वर्णन है।)

बंबी अंदर पौढ़ियो, काळो दबके काय।
पूँगी ऊपर पाधरो, आवै भोग उठाया॥

पूंगी की आवाज सुन कर कोई भी काला सांप अपनी बाँबी में सोता हुआ नहीं रह सकता। वह तो पूंगी की आवाज को सुनते ही तत्क्षण अपना फन उठा कर उसकी ओर आता है। इस सर्प की भाँति ही वीर भी रणभेरी की आवाज को सुनकर महलों में ही सोता नहीं रहता। वह तत्काल ही निद्रा का त्याग कर युद्धभूमि की ओर बढ़ता है।

जोगण पहली खाय पल, करै उतावळ काय।
भर खप्पर वाल्हे रुहिर, देसी कंत धपाय॥

हे योगिनी! तुझे इतनी शीघ्रता क्या है कि रुधिर पिये बिना तू पहले ही मांस खा रही है? मेरे पति तुम्हारे अत्यन्त प्रिय रुधिर से तुम्हारा खप्पर भर देंगे, उसे पीकर तुम परितृप्त हो जाना।

कंत भलां घर आविया, पहरीजे मो वेस।
अब धण लाजी चूड़ियां, भव दूजे भेटेस॥

युद्ध से भग कर आये हुये पति से व्यंग करते हुए पत्नी कह रही है—'हे पति! अच्छा किया कि आप युद्ध भूमि से भाग कर घर

आ गये। लीजिये, मेरे वस्त्र पहन लीजिये। मैं इन सुहाग-चूडियो से लज्जित हो रही हूँ [अर्थात् पुरुष की वीरता से ही स्त्री के सुहाग-चूडे की शोभा है] अब हम दूसरे लोक में ही मिलेंगे। यहाँ हमारा अब मिलन नही हो सकता।'

मणिहारी जा री सखी, अब न हवेली आव।
पीव मुवा घर आविया, विधवा किसा बणाव॥

पति युद्ध भूमि से पराजित होकर घर आ गये हैं। वीर पत्नी का गौरव-भाव और सुहाग दोनो ही इससे अपमानित हुये हैं। ऐसे प्रसग मे वह वीरागना एक मनिहारिन से जो शृङ्गार की वस्तुएँ देने आई है कह रही है— हे सखी मनिहारिन! वापिस अपने घर लौट जा। भूल कर भी इस मकान पर फिर न आना। मेरे पति युद्ध से भाग कर [जो मेरे लिये मरण तुल्य है] घर आ गये हैं। मैं तो अब विधवा हो गई हूँ। बता, किसी विधवा को शृङ्गार शोभा देता है?

घोडा चढणो सीखिया, भाभी किसडै काम।
बब सुणीजै पार को, लीजै हात लगाम॥

घर के सभी पुरुष बाहर गये हुए हैं। पीछे से शत्रुओ ने घर को घेर लिया है। ऐसी अवस्था मे क्षत्राणियाँ अपने कर्तव्य को समझती हैं— हे भाभी! आपने घुड-सवारी सीखी है—बताओ वह किस दिन के लिये? देखो शत्रु का नगाडा सुनाई पड रहा है, लगाम हाथ मे लेकर उनका सामना करो।"

हेली तिल-तिल कत रै, अग विलग्गा खाग।
हूँ बलिहारी नीमडै, दीधो फेर सुहाग॥

हे सखी! पति के शरीर पर जगह-जगह तलवारो के घाव लगे थे। मैं इस नीम वृक्ष पर बलिहारी हूँ कि इसके उपचार से मेरे पति के सारे घाव ठीक हो गये और मुझे फिर सुहाग मिल गया।

धण नूं आलगसी घणी, सुणिया वागी सार ।
हालीजे उण देसड़ं, प्राणां रौ बैपार ॥

वीर पत्नी अपने पति से कह रही है—'हे पति ! मुझे तो तभी सुहायेगा जब तलवारें परस्पर टकरायेंगी । अत मुझे आप उस देश में ले चलिये जहाँ प्राणों का व्यापार अर्थात् युद्ध होता हो ।'

नरा न ठीणो नारियां, ईखो संगत एह ।
सूरां घर सूरी महल, कायर-कायर गेह ॥

हे पुरुषो ! स्त्रियों को बुरा - भला मत कहो । संगति को देखना चाहिए । शूरवीरों के घर में वीरांगनाये मिलेंगी और कायर पुरुषों के घर कायर स्त्रियां मिलेंगी ।

ईस घणा जे आंखता, तो लीजै सिर तोड़ ।
धड़ एकण धण री घणी, पड़सी वैर बहोड़ ॥

वीरांगना महादेव से कह रही है—'हे महादेव ! यदि आप अपनी मुण्डमाला के लिए सिर की तलाश करते-करते बहुत थक गये हों और ऊब गये हों तो मेरे पति का सिर उतार लीजिये । मेरे पति का सिरहीन रुण्ड ही शत्रुओं से प्रतिकार ले लेगा ।''

नह पड़ोस कायर नरां, हेली बास सुहाय ।
बलिहारी जिण देसड़ें, माथा मोल बिकाय ॥

हे सखी ! मुझे तो कायर पुरुषों के पड़ोस में रहना भी अच्छा नही लगता । उस देश पर मैं न्यौछावर होती हूँ जहाँ सिर मोल बिकते हैं अर्थात् जहाँ युद्ध होता है ।

ठकुराणी सतियां कहे, भेजो चून घरां न ।
माथा जिण दिन मांगणा तिण दिन [illegible] ॥

वीर पत्नियाँ ठकुरानियों से कहती हैं—"हे ठकुरानियों ! आप लोग तो हमारे घर पर आटा तक नही पहुँचाती अर्थात् हमें पूरी जीविका भी नही देती । किन्तु जिस दिन हमारे सिर माँगे जायेगे अर्थात् हमें युद्ध में जाकर प्राणत्याग करने के लिए कहा जायेगा उस दिन हम तनिक भी लोभ नही करेंगी ।"

आळस जाणै ऐस मे, बपु ढीलै विकसंत ।
सीधू सुणियां सौ गुणा, कवच न मावै कंत ।।

एक वीर की पत्नी अपनी सखी से कह रही है—"मेरे पति भोग-विलास के समय तो आलस्य करते हैं, ढीले-ढाले रहते है किन्तु युद्ध की राग (सीधु राग) सुनते ही उनमें सौ गुणा उत्साह आ जाता है और उनका शरीर कवच मे नही समाता ।"

मतवाला माल्हे सुहड, घोड़ा सांकळ तोड़ ।
हेली इण घर पाहुणो, आसी चूड बिछोड़ ।।

इस घर मे शृंखलाये तोडने वाले वीर घोडे हैं । मतवाले योद्धा यहाँ आनन्द मनाते हैं । हे सखी ! इस घर पर जो भी अतिथि आयेगा [अर्थात् जो कोई आक्रमण करने का साहस करेगा] वह अपनी पत्नी के सुहाग-चूडे को उतरवाकर अर्थात् अपनी मृत्यु को निश्चित समझकर ही आयेगा ।

पोतां रै बेटा थिया, घर मे वधियो जाळ ।
अब तो छोडो भागणो, कंत लुभायो काळ ।।

एक वीरांगना अपने वृद्ध और कायर पति का उपहास करती हुई कह रही है—'हे पति ! आपके पोते के भी पुत्र हो गये । गृहस्थ का जजाल बढ गया । देखो, आपका अन्त समय भी अब तो निकट आ रहा है । अब तो इस प्रकार युद्ध-भूमि से भगने की आदत को छोड दीजिये ।"

किण दिन देखूं बाटड़ी, आतां पड़वै तूझ।
घाव भरंता आवगो, बीत्यौ जीवन मूझ॥

निरन्तर युद्ध होने के कारण पति के शरीर के घाव भरते ही नहीं हैं। एक युद्ध में लगे हुए घाव जब तक भरते हैं तब तक दूसरा युद्ध प्रारम्भ हो जाता है और उसमें पति के शरीर पर फिर घाव लग जाते हैं। ऐसे ही पति को सम्बोधन कर एक पत्नी कह रही है—'हे पति! शयनागार में आने की आपकी मैं किस दिन प्रतीक्षा करूं? आपके शरीर के घाव भरते-भरते मेरा तो सम्पूर्ण यौवन ही व्यतीत हो गया।"

दिन-दिन भोळौ दीसतौ, सदा गरीबी सूत।
काकी कुंजर काटतां, जाणवियो जेठूत॥

अपने वीर पति की प्रशंसा करते हुए एक पत्नी कह रही है—"मेरी जेठानी अपने जेठूत (मेरा पति) को हमेशा गरीब और भोला ही समझती थीं किन्तु आज जब उन्होंने अपने जेठूत (मेरा पति) को युद्धभूमि में हाथी काटते देखा तो वास्तविकता का ज्ञान हो गया कि जेठूत यथार्थ में वीर है।"

बाप वसाया बैर जे, लेवै निडर निराट।
बेटा सिर रा गाहकी, बळिया जोवै वाट॥

वीर माता अपने पुत्र को युद्ध के लिए उद्बोधन दे रही है—"हे पुत्र! तुम्हारे पिता ने जो शत्रुता की थी उसका प्रतिकार निःशंक होकर लिया जा रहा है। देखो, तुम्हारे प्राणों के सौदागर बाहर तुम्हारी प्रतीक्षा कर रहे हैं। अर्थात् जाओ, उनसे युद्ध करो।"

सूरां खोटौ सूरपण, चूड़ा अजब उतार।
हूं बलिहारी कायरां, सदा सुहागण नार॥

एक कायर स्त्री कह रही है—"वीरों की वीरता बुरी होती है, कारण कि इस वीरता से ही अनायास सुहागिन स्त्रियों को विधवा

होना पडता है। मैं तो कायर पुरुषो पर बलिहारी जाती हूँ। उनकी पत्नियां कभी विधवा नही होती।"

पैला सुणिया पांच से, घर मे तीर हजार।
आधा किण सिर ओरसी, जे खिजसी जोधार॥

सुना है कि शत्रु-सेना में तो सैनिक पांच सौ ही हैं और हमारे घर मे तीर एक हजार हैं। अब यदि इस योद्धा को क्रोध आ गया तो फिर आधे तीर वह किस पर चलायेगा? अर्थात् तब भयकर विनाश-लीला होगी।

सुण-सुण बीरा धाडवी, आलय देखो और।
घर री खूणें झूरसी, चख मग आता चोर॥

हे भाई डाकू! सुन। तू किसी अन्य घर को देख। यहां यदि तू इनको (मेरे पति को) चोर के रूप में भी दिखाई दिया तो भी तुम्हारी पत्नी के सुहाग की खैर नही है। अर्थात् तुम यहां से बचकर नही जा सकते।

मतवाला दळ आविया, छोडीजै गळ बांह।
आभ त्रिभागां ठेकियो, छोणी पाखर छांह॥

एक वीर पत्नी शयनागार मे सो रहे अपने पति से कह रही है—'हे मतवाले वीर! शत्रु-सेनायें आ गई हैं, आकाश भालो से ढक गया है, पृथ्वी घोडो की छाया से ढक गई है। मेरी गलबाह (प्रेमालिंगन) को छोड कर अब उठो और शत्रु से लडो।

सखी भरोसो नाह रो, सूनो सदन म जाण।
फूल सुगंधी फौज मे, आसी भँवर उडाण॥

पति घर पर नही है। पीछे से शत्रु-सेना ने घर पर आक्रमण कर दिया है। इस अवस्था मे वीर पत्नी अपनी एक सखी से कह रही

है—हे सखी ! इस घर को तू सूना मत समझ। मुझे अपने पति का पूरा भरोसा है। जिस प्रकार भौंरा बहुत दूर से ही सुगन्ध का आभास पाकर फूल पर आ जाता है, उसी प्रकार फौज का आभास पाकर मेरे पति भी जरूर चले आयेंगे।

इळा न देणी आपणी, हालरियाँ हुलराय।
पूत सिखावै पालणै, मरण बडाई माय॥

झूले के गीत गाते हुये अपने शिशु-पुत्र को झुलाती हुई माता कह रही है—"हे पुत्र ! अपनी पृथ्वी किसी को भी नहीं देनी चाहिए।" मृत्यु के महत्व की शिक्षा इस प्रकार वीर-माता अपने पुत्र को उसके शैशव मे ही दे देती है।

काय उताली कंकणी, जे मद पीवण जेज।
कंत समप्पै हेकलो, कटकां ढाहि कळेज॥

हे चील ! इतनी बेचैन क्यो हो रही हो ? मेरे पति के मद्यपान करने मे ही विलम्ब समझो। मद्यपान करते ही वे अकेले ही सम्पूर्ण शत्रु-सेना का कलेजा काट कर तुम्हे सौंप देंगे फिर तुम आनन्द के साथ पेट भर खाना।

नंह वीरा त्रण झूंपड़े, धाडो एथ खटाय।
थावै दादुर थाप री, काळा रै फण काय॥

एक डाकू को,जो वीर के झोपडे पर डाका डालने के इरादे से आया है, सम्बोधन कर यह बात कही जा रही है—'हे भाई ! इस झोपडे पर तुम्हारी यह डकैती चल नही सकती। क्या काले साँप के फण पर मेंढक की चपत लग सकती है ? अथवा मेंढक की चपत का काले साँप के फण पर क्या असर हो सकता है ? अर्थात् कुछ भी नही।

जीवीजै ऊमर जितै, सोय घरे धण संग।
भोळा किण भरमाविया, इण घर लूट उमंग॥

एक वीर के झोपडे पर आक्रमण के इरादे से आने वाले शत्रुओ को सम्बोधन कर यह बात कही जा रही है—हे भोले लोगो ! अपने घर लौट जाओ और जितनी आयु शेष है उसे अपनी पत्नियों के साथ सो कर भोगो। तुम्हे किस मूर्ख ने भरमा दिया कि तुम इस वीर के घर को लूटने के लिये उमग के साथ चले आये ?

जात पिछाणै जात री, औरा पीड न ऐस ।
रे भोळा धण रोवसी, सो दुख मूझ विसेस ॥

मैं स्त्री हूँ। तुम्हारी पत्नी के दु ख को सजातीय होने कारण मैं ही अनुभव कर सकती हूँ। पीडा की ऐसी अनुभूति किसी और को नही हो सकती। तुम इस वीर के घर पर आक्रमण करने आये तो हो किन्तु हे भोले ! मुझे यही विशेष दु ख है कि तुम्हारी पत्नी रोयेगी। अर्थात् उसे विधवा होना पडेगा।

आक पळासा झूपडो, दैवै कीध न हत ।
हियै न तोभी ऊतरै, कीस लुभावै कत ॥

वीर पत्नी अपनी सखी से कह रही है—"भगवान् ने मेरे पति को आक-पलाश का झोंपडा तक नही दिया है अर्थात् वे बहुत ही दरिद्र हैं किन्तु न मालूम उनके किस गुण ने मुझे लुभा रखा है कि वे मेरे हृदय से एक क्षण को भी नही उतरते।"

यह स्त्री अपने पति के वीरत्व पर ही मुग्ध है।

पग-पग हैवर पाडिया, गैवर माता गाज ।
रण सेजां धव पोढियो, भडा गरुरी भाज ॥

एक वीर पुरुष की पत्नी अपनी सखी से कह रही है—'कदम-कदम पर मतवाले हाथियों का गजन कर, घोडो को गिराकर और वीरो के अभिमान को चूर-चूर कर मेरे पति रण-शैय्या पर सो गये।'

वैरी वाडे बासडो, सदा खणकै खाग ।
हेली के दिन पाहुणो, ऊढा भाग सुहाग ॥

एक स्त्री अपनी सखी से ससुराल के अपने घर और युद्धप्रिय पति के सम्बन्ध में कह रही है—"हे सखी ! शत्रु के घर के निकट ही मेरे पति का घर है। वहां सदैव तलवारें बजा करती है। ऐसी अवस्था में मेरे भाग्य में सुहाग कितने दिन का मेहमान है ? यह कोई नही कह सकता।"

वैद रहीजै राजघर, पावै केथ गरीब।
हेली दूध धपाड़ियो, म्हारे नीम तबीब॥

हे वैद्यराजजी ! आप एक गरीब को कैसे सुलभ हो सकते हैं ? आप तो राजा के घर ही रहिये। हे सखी ! दूध से सींचकर तृप्त किया हुआ यह नीम का वृक्ष ही हमारे लिये तो वैद्यराज है।

भोग मिलीजै किम जठै, नरां नारियां नास।
यौ ही मायड़ डायजो, दीजै सूवस वास॥

एक कायर कन्या अपनी मां से कह रही है—जिस प्रदेश में नर और नारियों का सदा संहार होता रहता है वहां भोग-विलास-पूर्ण शान्त जीवन कैसे प्राप्त हो सकता है ? हे मां ! मुझे तो ऐसे घर में देना जहां के लोग युद्धप्रिय न होकर शान्ति चाहने वाले हों। मैं तो इसे ही दहेज मान लूंगी।

पायो हेली पूत नूं, सोमण थण लिपटाय।
अचरज अतरै जीवियो, क्यूं न मरै अब जाय॥

हे सखी ! मैंने अपने स्तनों पर जहर लगाकर अपने पुत्र को दूध पिलाया था, वह अब जाकर युद्ध में मरा है। मुझे तो आश्चर्य है कि वह अब तक किस प्रकार जीवित रहा। अर्थात् वीर मातायें अपने पुत्रों को युद्ध में प्राणोत्सर्ग करने के लिए ही पालती-पोसती हैं।

तन दुरंग अर जीव तन, कढ़णो मरणो हेक।
जीव विणठ्ठा जे कढो, नाम रहीजे नेक॥

शरीर मे से प्राणो का निकलना और किले मे से शरीर का निकलना दोनो एक समान है। ऐसी अवस्था मे किले मे से युद्ध करते हुए प्राण देकर शव-रूप मे निकलना ही उत्तम है। इससे पीछे नाम तो रहेगा।

कायर घर ऊढा कहे, की धव जोटे काम।
कण-कण सचै कीडियाँ, जोवे तीतर जाम ॥

एक कायर पति मे वीर पत्नी कह रही है— हे पति देव ! इस प्रकार आपके धन-सचय से क्या लाभ होने वाला है ? कीडियाँ कण-कण कर अन्न एकत्र करती रहती हैं किन्तु तीतर के बच्चे उसे देख लेते है और खा जाते हैं।" अर्थात् वीर पुरुष आकर आपके इस कठिनाइयो से सचित किये हुए धन को लूट ले जायगे।

कीधी घर-घर जोगणी, दीधी नर-नर दाह।
जोबन गो आई जरा, की अब नाह सनाह ॥

एक वीरागना अपने वृद्ध पति से, जो अभी भी युद्ध के लिए सज्जित और उत्साहित है, कह रही है–'आपने घर-घर मे स्त्रियो को विधवा-वेष देकर योगनियाँ बना दिया, प्रत्येक पुरुष को व्यथित कर दिया। अब आपकी यौवनावस्था भी चली गई और वृद्धावस्था आ गई। हे पतिदेव, अब कवच पहन कर आप क्या करगे ?"

जिण बन भूल न जावता, गैंद गवय गिडराज।
तिण वन जबुक ताखडा, ऊधम मडै आज ॥

जिस जगल मे भूल कर भी गैंडे, हाथी और सूकरराज नही जाते थे अर्थात् वहाँ जाने का उनका साहस तक नही होता था, वहाँ आज गीदड जमकर धूमधाम कर रहे हैं। अर्थात् वीर के आतक और पराक्रम के नष्ट हो जाने से कायर और दुर्बल व्यक्ति भी बहादुर बन जाते हैं।

डोहै गिड वन वाडिया, द्रह ऊडा गज दीह ।
सीहण नेह सकैक तो, सहळ भुलाणो सीह ।।

ऐसा प्रतीत होता है कि सिंह अपनी प्रियतमा सिंहनी के स्नेह मे पड कर बाहर घूमना भूल गया है। तभी शूकर वन और वाडियो को उजाड रहा है और हाथी गहरे सरोवर के पानी को गदला कर रहा है। अर्थात वीर पुरुष भोग-विलास मे लिप्त हो गये है इसीलिए कायर और दुर्बलो की बन आई है।

('वीर सतसई' से)

धनाक्षरी

रण जिम सूरनको मुदिर मयूरनको,
विधु विस सूचनको कजको कठोर धाम।

वन्हिको वयारि बिटपावलिको वारि सह,
कार ज्यो सफल पथिकन के पृथुल काम।

रोगीको सुधा ज्यो कालभोगीको रुचिर राग,
रति रमनीनको धनीनन कला के ग्राम।

सुभटको साधुको सुकविको सभाको असे,
पडितको पटुको प्रजाको राव राजा राम ।।

इस छन्द मे बूंदी नरेश रावराजा हाडा रामसिंह की प्रशसा की गई है। जिस प्रकार शूरवीरों के लिए युद्ध, मोरवृन्द के लिए बादल, चकोरो के लिए चन्द्रमा, कमल-पुष्प के लिए सूर्य का प्रखर प्रकाश, अग्नि के लिए वायु वृक्षो के लिए जल और यात्रियो के लिए आम्रवृक्ष की छाया सुखद और कामना सिद्ध करने वाले होते हैं और रोगी के लिए जिस प्रकार अमृत, सर्प के लिए मधुर रागिनी, रमणियो के लिए रति-क्रीडा और धनी पुरुषो के लिए सगीत का सरगम

आनन्ददायक होते हैं उसी प्रकार रावराजा रामसिंह वीरो साधुओ सुकवियो सभासदो, पण्डितो, चतुरो और प्रजा के लिए सुखद, आनन्ददायक और कामना सिद्ध करने वाले हैं।

मन हरण

खेत मैं कहो तो उपमान वनैं अर्जुन के,
हेत मैं कहो तो हिय हरैं हितूजन के।

ओज मैं कहो तो आठो जाम ही उदित रहै,
फोज मै कहो तो भट अतक अरन के।

वुधन को दाबै कोटि बानी मैं कहो तो साव,
धानी में कहो तो न्याय पूगत परन के।

घर मैं कहो तो अलका की आखि राजाराम,
कर मैं कहो तो तुल्य कर न करन के।।

बूंदी नरेश रावराजा हाडा रामसिंह के गुणो और उनके राज्य की प्रशसा मे यह छन्द कहा गया है।

युद्ध-भूमि मे रावराजा रामसिंह अर्जुन के समान वीर दिखाई देते हैं। स्नेह मे वे अपने सभी हितैपियो के हृदय को जीत लेते है। उनके प्रताप का यदि वर्णन किया जाय तो वे आठो प्रहर सूर्य के समान प्रभावान रहते है। सेना में वे शत्रु वीरो के लिए यमराज के समान है। शास्त्रार्थ मे वे पण्डितो को भी परास्त कर देते है। न्याय देने मे वे कही त्रुटि नही करते यहाँ तक कि शत्रुओ को भी इनके दरवार मे न्याय मिलता है। इनकी राजधानी बूंदी कुबेर की नगरी की सुन्दर आँख के समान है। दान देने मे राजा कर्ण के हाथो से भी इनके हाथ बढकर है।

घनाक्षरी

चोरैं चाहि चितन झकोरैं असि रान भट,
  औरेंगे अहोरैं दोरैं बावर के भोरैं भीर।

जोर जब जोरैं बढि आतन बिछोरैं केक,
  लाघव के छोरैं वार तोरैं सिर मोरैं मीर।

मोदन बलापति को ओदन उजेरि इत,
  तोदन तुरक्कन विनोदन धरत धीर।

होदन मे कूदि के निसादिन के गोदन मे,
  मोदन मे मलपि कटार हनैं हाडे वीर।।

इस छन्द में राणा सांगा और बाबर की सेनाओ के युद्ध का वर्णन है। इस युद्ध मे राणा सांगा की सेना मे हाडा वीर भी थे। उनके युद्ध-कौशल की प्रशसा की गई है।

राणा के वीर चाहकर विस्तृत रणक्षेत्र मे अपनी तलवारें चला रहे हैं। बाबर के भ्रम मे वीरो की भीड इधर-उधर दौड रही है। अन्य उमराओ और वीर सामन्तो के हाथियो को वे वीर आगे नही बढने देते। आगे बढ-बढ कर योद्धाओ की शक्ति को ये परास्त करते हैं, कितने ही वीरो को नष्ट करते हैं। अपनी तलवारो के वार के कौशल से ये कई वीरो के सिरो को काटते हैं। अपने स्वामी अरावली के पति राणा सांगा द्वारा प्राप्त अन्न को वे आज यहां उज्ज्वल कर रहे हैं और प्रसन्न हो रहे है। तुरको को नष्ट कर रहे है। हृदय मे धैर्य धारण किये हुए वे प्रसन्नचित्त लड रहे हैं। कूद कर हाडा वीर हाथियो के हौदो पर चढ जाते है और उनमे बैठे शत्रु वीरो की गोद मे बैठकर अत्यन्त हर्ष के साथ कटारें चलाते है।

घनाक्षरी

वीर रस छल्लै छल्लै अबुद अनीक उभै,
  बगगन अचल्लै औचि खगगन मचल्लैं खेत।

कल्लै स्वर कातर दहल्लैं दूरहोत ठल्ले
ठामठाम गिनत गिरे भटन लग्गे प्रेत

पल्लैं छेह मल्लै नाक नारिन नवल्ले नेह
पैठे तोप तल्ले गति राग रस भल्ले चेत

छाती धरि हल्ले मे मुसल्ले भयकात इन्है
भल्ले हथचळे डिगात तिन्है टल्ले देत

वीररस से भरी हुई मेघो के समान दोनो ओर की सेनायें बढी। प्रबल वीर घोडो की बागें खींच कर तलवारें लेकर युद्ध के लिए मचले। दहल कर कातर स्वर मे चिल्लाने वाले और रणक्षत्र मे दूर दूर तक आहत होकर गिरने वाले कायरो को स्थान स्थान पर प्रेत गिनने लगे। वीर गति प्राप्त अनन्त अप्सराओ से नया स्नेह प्राप्त कर मिल रहे हैं और रागरस से सिक्त एक दूसरे के हृदय मे तोप के गोले की भांति प्रवेश कर रहे हैं। इन वीरगति प्राप्त वीरो को मृत मुसलमान सैनिक आगे बढकर अप्सराओ से अलग कर रहे है किन्तु रणकुशल ये आर्य वीर उन्हे टल्ले देकर गिरा देते हैं।

पद्धतिका

अतिकाय बाजि फादत अकास,
मिटि जात दुग्ग पद्धर मवास।

रवि लियउ ढंपि खुरतार खेह,
मंडिय कि भद्द आसार मेह।

किलकिलत मग कालिय कराल,
खिलखिलत भलगत खेत्रपाल।

जुग्गिनि जमाति जय-जयति जपि,
झपटत झुकत वेताल झपि ।

वकवकत • सग वावन प्रमत्त,
सवसकत गिद्ध सिर होत छत्त ।

डमरुक डकर डाहल डमकि,
ठहनाय हूर नूपर ठमकि ।

सजि चलिय मग भैरव निसूल,
फरकिय सिचान हिय असन फूल ।

आतापि ओघ ढक्त अकास,
फेरड फलगत गिलन ग्रास ।।

इन छदो मे नादिरशाह की सेना का वर्णन हुआ है । दिल्ली पर आक्रमण करने के लिये वह आगे बढ रही है । युद्ध की विकरालता का वर्णन भी इनमे हुआ है ।

नादिरशाह की सेना के विशाल शरीर वाले घोडे जब कूदते है तो आकाश को छूने लगते है । डाकुओ के रहने के स्थान और किले नष्ट हो रहे हैं । घोडो के खुरो से उडने वाली मिट्टी से सूर्य आच्छादित हो गया है । ऐसा प्रतीत होता है कि धनी वर्षा करने के लिये आकाश मे बादल छा गये हो । प्रचण्ड कालिका कोलाहल कर रही है । भैरव और उनके गण अट्टहास कर रहे हैं । योगनियो का समूह जय जय की ध्वनि कर रहा है । बेताल लाशो पर झपट रहे हैं । उनके साथ उन्मत्त बावन भैरव भी हुँकार कर रहे हैं । आकाश में गिद्धों के पख फैला कर उडने से एक विशेष ध्वनि हो रही है और युद्ध भूमि पर छाया हो गई है मानो उन्होने छाता तान दिया हो । डमरु की डिम्-डिम् ध्वनि से सिंह भी भयभीत हो रहे हैं । अप्सराओ के नूपुरो की ध्वनि वीरो के कानो में पड रही है । युद्ध मे देवता

भैरव त्रिशूल हाथ मे लेकर चल रहे हैं। आकाश में बाज उड रहे है। युद्धभूमि मे अपनी अपार भोजन सामग्री को देखकर वे फ़ूले नही समाते। चील्हो के समूह से आकाश आच्छादित हो गया है। लाशो को निगल जाने के लिये गीदड प्रसन्न होकर इधर उधर कूद रहे हैं।

मुक्तादाम

उडैं सिर अंबर पच्छिन पेलि।
करैं जनु कालिय कदुक केलि॥

उछट्टाह ढालन मे कढि अंत।
भुजग टिपारन मे कि भ्रमत॥ १

रुरैं सिर अद्ध फट्यो इहि रारि।
दयो जनु जुग्गिन खप्पर डारि॥

सिखा करि सूरन की फहरात।
किधो जयकेतु प्रभन्जन पात॥ २

गिरैं फटि टोपन ते करवाल।
फटा विनु लेत भुजग कि फाल॥

सुहावत के झरि नक्क समूल।
फबैं इस मास मनो तिलफूल॥ ३

इन छन्दो मे भी युद्ध-वर्णन हुआ है--

पक्षियो को हटाकर आकाश मे युद्धभूमि मे आहत सैनिको के सिर उड रहे है। यह दृश्य ऐसा प्रतीत हो रहा है मानो कालिका आकाश के मैदान मे गद खेल रही है। मृत सैनिको की आँत उछल रही हैं मानो पिटारे में सर्प घूमते हो। इस युद्ध मे आधे कटे हुए सिर लुढक रहे हैं मानो योगनियो ने अपने खप्पर फेक दिये हो। वीरो की

हो हैं मानो वायु के झोको से विजय के ध्वज फहरा तलवारें टूट कर गिर रही है मानो बिना फणि के ेरों के नाक मूल सहित कट कर गिर रहे हैं मानो तिल के फूल पक कर गिर रहे हो।

निसान बडे बहरक्कि निसान उडें बियरें।
क की निक्सें कि पराझल होरिय की प्रसरें॥
भेरि भनकिय रॉग रनकिय कोच करी।
य बान सनकिय चाप तनकिय ताप परी॥

मे युद्ध का वर्णन हुआ है।

छोटी ध्वजायें दिशा-दिशा मे उडकर फैल रही है जिह्वायें निकली हैं अथवा होली की ज्वालायें के गले मे बँधे घण्टे बजने लगे, कवचो की कडियाँ लगी। घोडो की पाखरो की झकार व धनुष- से भय का वातावरण बन गया।

कन लगि लचक्कन कोल मचक्कन तोल बढ्यो।
र खुभी खुरतालन व्याल कपालन साल बढ्यो॥
स्र्ग ग डुले झगमग्गि कृपानन अग्गिझरी।
लन हल्ल उझल्लन भुम्मि हमल्लन घुम्मिभरी॥

होने वाले धमाको के कारण भूमि लचकने लगी और ने वाले वाराह को धक्का सा लगा और वह अधिक वाले घोडो के भार से और उनकी खुरतालो की न के कपाल की सलवटें और बढ गई। पर्वत शिखर और कृपाणो से आग की झडी लग गई। युद्ध मे होने सी तबलो की खालो से ध्वनि होने लगी और वार- से पृथ्वी अधिक घूमने लगी।

जनकवि ऊमरदान : जीवनी

सन्त और भक्त कवियो के अतिरिक्त राजस्थानी भाषा मे लिखने वाले अधिकाश कवियो को प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से किसी राजा, ठाकुर अथवा सामन्त के यहाँ आश्रय और सम्मान प्राप्त था। ये आश्रित अथवा सम्मानित कवि अपने आश्रयदाताओ की अतिशयोक्तिपूर्ण प्रशसा अपने काव्य मे करते थे और यह स्वाभाविक भी था। इसलिये राजस्थानी काव्य के सम्बन्ध में एक बात प्राय कही जाती है कि उसमे आश्रयदाताओ की प्रशसा अधिक है। इस कथन मे आशिक सत्य अवश्य है किन्तु आश्रय और सम्मान-प्राप्त कवियो ने केवल प्रशसा-काव्य ही लिखा हो, ऐसी बात नही। प्रशसा के साथ आवश्यकता पडने पर इन कवियो ने अपने आश्रयदाताओ की निन्दा भी की है। उनके अनुचित और असगत आचरण और स्वभाव की आलोचना कर उन्हे सही दिशा का ज्ञान भी कराया है।

सन्त, भक्त और आश्रय-प्राप्त कवियो के अतिरिक्त यहाँ एक वर्ग ऐसे कवियो का भी रहा है जो अर्थ, यश और सम्मान की इच्छा से असपृक्त रह कर समाज और शासन मे व्याप्त बुराइयो पर खुला प्रहार और तीव्र व्यग करता रहा है। इन कवियो ने धर्म, दर्शन, समाज और शासन मे प्रविष्ठ अन्ध मान्यताओ घातक रूढियो और विसगतियो का ऐसा उपहास किया है कि इनकी निर्भीकता, फक्कडपन और जागरूकता पर विस्मित होना पडता है। इन कवियो की भाषा भी लोक-जीवन के निकट रही है, इनकी काव्यशैली भी दुरुह और शास्त्रीय न होकर सहज रही है। यही कारण है कि ये अत्यधिक लोकप्रिय हुये। सच्चे अर्थों मे ये जनकवि कहे जा सकते हैं। यद्यपि ऐसे कवियो की सख्या अधिक नही है फिर भी राजस्थानी साहित्य मे एक वर्ग इस प्रकार के जनकवियो का रहा अवश्य है। ऊमरदान इस वर्ग के प्रतिनिधि कवि माने जा सकते हैं।

ऊमरदान के सम्पूर्ण काव्य मे आश्चर्यजनक निर्भीकता और विद्रोही आत्मा के दर्शन होते हैं। जीवन और समाज का उन्होने बहुत निकटता और गहराई से अनुभव किया था। समाज के विविध वर्गो, सस्थाओ और व्यवस्थाओ का उनका अध्ययन बहुत ही सूक्ष्म था। समाज के विविध वर्गो मे व्याप्त भ्रष्टाचार और व्यभिचार को उन्होंने स्वय देखा था। धर्म का आडम्बर, सन्तो का कपट आचरण, राजाओ और ठाकुरो की विलासिता से होने वाली सामाजिक और सास्कृतिक क्षति को उनकी विद्रोही आत्मा कब स्वीकार करती? बहुत ही कठोर और कटु भाषा मे ऊमरदान ने इनकी नग्नता को बेपर्दा किया है। शराब, वेश्या, अफीम, मूर्ख, कायर, असन्त, अकाल, धनिक, दास, पराधीनता आदि विषयो पर उन्होंने खुलकर कलम चलाई। सामाजिक जीवन मे जहाँ भी उन्हे खराबी दिखाई दी उसकी उन्होंने निडरता से आलोचना की। वे वास्तव मे समाजधर्मा कवि थे।

जीवन—ऊमरदान का जन्म फलोदी [जोधपुर] तहसील के एक छोटे से गाँव ढाढरवाडा मे वैशाख शुक्ला २ वि स १६०८ को एक साधारण चारण [लालस गोत्र] परिवार मे हुआ था। इनके दादा का नाम मेघराजजी और पिता का नाम बख्शीरामजी था। ये तीन भाई थे। माता-पिता का देहान्त बचपन मे ही गया था। भाइयो ने इनकी विशेष देख-रेख नही की। जमीन-जायदाद को लेकर परिवार मे अक्सर कलह होती रहती थी। माता-पिता के स्नेह का अभाव, परिवार का कलहपूर्ण वातावरण, निर्धनता आदि से दुखी होकर ये बचपन मे ही खेडापा के रामस्नेही सम्प्रदाय के मठ में चले गये और उस सम्प्रदाय मे दीक्षित हो गये। यहाँ साधुओ की मण्डली मे रह कर इन्होंने कुछ शिक्षा भी प्राप्त की। इन रामस्नेही साधुओ की मण्डली के साथ इन्हे मारवाड के अनेक गाँवो मे घूमने का अवसर भी मिला। साधुओ के वास्तविक जीवन और आचरण को इन्होंने अत्यन्त निकट से देखा। ये सन्त किस प्रकार भोलीभाली जनता को ठगते थे, धर्म के नाम पर उसका शोषण करते थे, कुलीन घरो की बहू-बेटियो को चेलियाँ बना कर किस प्रकार पथभ्रष्ट करते थे—यह सब उन्होने प्रत्यक्ष देखा।

ऐसे कपटपूर्ण सन्त-जीवन और इन्द्रिय-भोगी साधु समाज से उन्हे तीव्र घृणा हो गई। इस सम्प्रदाय से अपने सम्बन्ध विच्छेद कर वे पुन गृहस्थ हो गये। इनके दो पुत्रो मे से एक का देहान्त तो जब वह १८ वर्ष का था तभी हो गया। दूसरे पुत्र मीठालाल लालस मारवाड राज्य की पुलिस सेवा मे लम्बे समय तक अच्छे पद पर रहे।

ऊमरदानजी ने अपने माता-पिता, परिवार, जन्म-स्थान, रामस्नेही सम्प्रदाय में दीक्षित होने आदि घटनाओ का उल्लेख एक छन्द मे किया है जो इस प्रकार है—

मुलक मारवाड मे चली के मध्य जन्म जोय,
चारन वरन चारु विकळ विसासी को।

वाळ वय मे ही पितुमात परलोक बसे,
भ्रात नवलेस भयो हुयो खेल हाँसी को।

राडा के सनेही गुरु मुखिया मुरार मिल्यो,
धरणी श्री प्रताप धारियो अकुर उदासी को।

सुख को न कीन्हो सोच लख ऊमरेस लीन्हो,
देव सब दीन्हो सरजाम सत्यानासी को॥

अग्रेजी पढने के लिये १९-२० वर्ष की आयु मे ये जोधपुर की एक पाठशाला मे भर्ती हुये। पाँचवी कक्षा तक इन्होने अग्रेजी सीखी, फिर पाठशाला छोड दी, किन्तु घर पर अभ्यास कर अग्रेजी का काफी ज्ञान प्राप्त कर लिया। इनकी अग्रेजी विशेष प्रकार की होती थी। राजस्थानी और हिन्दी के शब्दो का प्रयोग भी ये अग्रेजी मे निधडक करते थे। आज भी राजस्थान के लोक-मानस मे जिस प्रकार सर प्रताप (जोधपुर) की अग्रेजी की स्मृति बनी हुई है, उसी प्रकार ऊमरदान की अग्रेजी का भी लोग उल्लेख करते हैं।

यह दुर्भाग्य है कि ऊमरदान के जीवन की विस्तृत सामग्री प्राप्त नही होती जब कि उन्हे ससार को छोडे हुये अभी मुश्किल से ७५ वर्ष हुये हैं। उनका पारिवारिक जीवन कैसा था? वे क्या व्यवसाय करते थे? वे किन-किन स्थानो पर रहे? उन्होने काव्य-शास्त्र और अन्य विषयो का इतना व्यापक अध्ययन कहाँ और किस गुरु के सान्निध्य मे किया? अपने काव्य-ग्रन्थो की रचना उन्होंने कहाँ और कब की? ये सभी प्रश्न आज भी उत्तर की अपेक्षा रखते हैं। आश्चर्य है कि इतने लोकप्रिय और महान कवि के सम्बन्ध में विद्वानो ने इतनी उपेक्षा-दृष्टि क्यो रखी। इसका कारण सभवत यह रहा हो कि ये दरबारी अथवा किसी राजा के आश्रय-प्राप्त कवि नहीं थे। इसलिये विद्वानो ने इन्हे अधिक महत्व नही दिया। ये जनता के कवि थे और जनता के हृदय में अवश्य प्रतिष्ठित हो गये।

इनकी काव्य प्रतिभा, धर्म, दर्शन और शास्त्र-ज्ञान से जोधपुर के तत्कालीन महाराजा जसवन्तसिहजी (द्वितीय) बहुत प्रभावित थे। वे इनका यथोचित सम्मान करते थे। वि स १९४० मे महर्षि दयानन्द को मेवाड से जोधपुर आने के लिये निमत्रण पत्र लेकर महाराजा जसवन्तसिह ने ऊमरदान को ही भेजा था। सर प्रताप भी इनसे बहुत प्रसन्न थे। महर्षि दयानन्द के निकट साहचर्य मे रहने का अवसर ऊमरदान को मिला था। इनके व्यक्तित्व का दूरन्त प्रभाव ऊमरदान पर पडा था। इसे इनके काव्य मे देखा जा सकता है। दयानन्द के जीवन और चरित्र और आर्य समाज के दर्शन पर ऊमरदान ने काव्यग्रन्थो की रचना की। महाराजा जसवन्तसिह और सर प्रताप की प्रशसा मे भी इन्होने काव्य रचे हैं किन्तु इन रचनाओ मे व्यर्थ की अतिशयोक्ति-पूर्ण प्रशसा नही है। इन दोनो व्यक्तियो के जीवन मे कुछ मानवीय गुण ऊमरदान ने देखे थे और उनकी प्रशसा करना उन्होंने उचित समझा। यह सत्ताधारियो की प्रशसा न होकर मानवीय अच्छाइयो का सत्कार है।

ऊमरदान प्रकृति से बहुत ही मस्त, विनोदी, निर्भीक और निष्कपट थे। उनमे अहकार का लेशमात्र भी नही था। एक

बार वे उदयपुर गये। वहाँ के विक्टोरिया हॉल मे इनका परिचय राजस्थान के प्रसिद्ध इतिहासवेत्ता और पुरातत्वविद् गौरीशकर हीराचन्द ओझा से हुआ। जब ओझाजी ने इनका नाम पूछा तो ऊमरदान ने अपनी सहज मस्ती से हिन्दी-मिश्रित अग्रेजी मे उत्तर दिया, 'मेरा नाम डेली डिलाइटफुल (सदैव प्रसन्नचित्त) ऊमरदान है।'

इनकी वेशभूषा अत्यन्त साधारण एक किसान की-सी रहती थी—मोटे सूती वस्त्र, घुटनो तक ऊँच धोती और हाथ मे एक डण्डा। इनके मुख पर निर्भीकता, प्रसन्नता और मस्ती सदैव रहती थी। ऊमरदान के सौम्य स्वभाव को प्रकट करने वाला उनका स्वरचित एक छन्द मिलता है जो इस प्रकार है—

जोगी कहो भव भोगी कहो,
रजयोगी कहो को कैसेइ हैं।

न्यायी कहो अन्यायी कहो,
कुकसाई कहो जग जैसेइ है।

मीत कहो वो अमीत कहो,
ज्यु ँ पलीत कहो तन तैसेइ है।

ऊत कहो, अवधूत कहो,
लो कपूत कहो हम है सोइ है॥

फाल्गुन शुक्ला १३, वि. स १६६० को केवल ५१ वर्ष की अल्पायु मे ही ऊमरदान की मृत्यु हो गई। राजस्थानी भाषा और साहित्य ने अपना एक महान् रत्न खो दिया और राजस्थान का जनसमाज भी अपने जननायक कवि को खोकर उस दिन मानो अनाथ हो गया। ऊमरदान के काव्य के प्रशसक कवियो ने इनकी मृत्यु से शोक पीडित होकर अनेक मरसिये लिखे। एक मरसिया इस प्रकार है—

हमे निपट श्रळगो हुवो, लालस नेह लगाय।
वागा विच डेरा किया, जागा श्रवकी जाय॥

विद्या कविता वीरता, ऊमर तो उपदेस।
एकरण यों फिर श्रावज्यो, देखो मरुधर देस॥

ग्रंथ—ऊमरदान ने अधिकाश मुक्तक काव्य लिखा है। कुछ छोटी-छोटी प्रबन्ध रचनायें भी इन्होंने लिखी हैं। धर्म, भक्ति का महत्व, जीवन की नश्वरता, श्रसन्तो के श्रवगुरण श्रादि विपयो पर इनके बहुत से पद भी मिलते हैं जो शास्त्रीय राग-रागनियो पर श्राधारित हैं। अत्यन्त सरल, सरस श्रौर सुबोध होने के कारण ये काफी लोकप्रिय भी हैं। तत्कालीन सामाजिक समस्याश्रो को लेकर दोहा, सोरठा श्रौर छप्पय छन्द मे इन्होंने कुछ स्फुट रचनाये भी लिखी जो अपने तीखे व्यग, सरल भाषा श्रौर काव्य-प्रभाव के कारण बहुत ही प्रसिद्ध हुई। छोटे सन्ता रो खुलासो, तोपा री तारीफ, क्षत्रिया रा साचा गुण, तम्बाखू री ताडना, दारू रा दोस, विभचार री बुराई, दासी द्वादसी, दयानन्द री दया, दयानन्द-दर्शन, चलदार करामात, डफोल-ढूडी, राठोड दुर्गादास री श्रौरगजेव ने श्रर्जी श्रादि इनकी फुटकर लम्बी कवितायें है जो विषय के महत्व के साथ काव्य-गुरण से भी सम्पन्न है।

इन्होंने भक्ति की महिमा, सन्तो की महिमा, महाराजा जसवतसिंह श्रौर सर प्रताप की प्रशसा, श्रफीम के श्रवगुण श्रादि विपयो पर छोटे छोटे काव्य-ग्रथ भी लिखे थे जिनका सक्षिप्त परिचय इस प्रकार है—

१. **विलास बावनी**—यह छन्द नाराच मे लिखी हुई एक छोटी-सी काव्य कृति है। इसमे कुल ५२ छन्द हैं। 'मनुष्य जीवन भर इन्द्रिय-भोगो श्रौर सासारिक प्रपचो मे डूबा रहा। एक क्षण भी उसने यह नही सोचा कि यह भौतिक विलास, यह ससार, यह जीवन सभी नाशवान हैं। ईश्वर श्रौर ईश्वर का नाम ही सत्य है। इस जीवन का उद्देश्य जन्म श्रौर मृत्यु के बन्धन से मुक्त होकर

परमात्मा का चिरन्तन साहचर्य प्राप्त करना है। मनुष्य अज्ञान-वश ऐसा नही कर रहा है इसलिये उसे भयकर पश्चाताप है।' इस पूरी कृति मे मनुष्य द्वारा किये गये कुकृत्यो और दुराचरण का वर्णन है। साथ ही अन्तिम छन्दो मे प्रियतम परमात्मा के वियोग मे दुखी जीवात्मा के आन्तरिक रुदन का भी चित्रण इसमें हुआ है।

२ सन्ता री महिमा—यह कृति छन्द त्रोटक मे लिखी हुई है। इसमे प्रारम्भ मे ५० त्रोटक और अन्त मे दो दोहे है। रामस्नेही सम्प्रदाय की रेण शाखा के प्रवर्तक सन्त दरियावजी की इसमे महिमा गाई गई है।

३. श्री हरिरामदासजी रो सुजस—यह कृति मोतीदाम [मुक्तादाम] छन्द में लिखी हुई है। इसमे कुल ४३ छन्द हैं। राम-स्नेही सम्प्रदाय की सिंहथल शाखा के प्रवर्तक श्री हरिरामदासजी के सुयश का गान इस कृति मे हुआ है।

४. जसवन्त जस जलद—यह कृति कवित्त, सवैया, दोहा और सोरठा मे रचित है। यह अपेक्षाकृत एक बडी रचना है। इसमे कुल १८० छन्द हैं। जोधपुर नरेश महाराजा जसवन्तसिंह (द्वतोय) के उज्ज्वल यश का अत्यन्त काव्यमयी भाषा मे इस कृति मे वर्णन हुआ है। इसकी रचना महाराजा जसवन्तसिहजी की मृत्यु के पश्चात् हुई थी। यह एक अत्यन्त मार्मिक शोक-काव्य है।

५. सन्त असन्त सार—इस छोटी-सी काव्यकृति मे कुल ५१ छन्द [दोहा, सोरठा और नगर निसांणी] हैं। सत और असत का वर्णन इस कृति का मूल विषय है। वेषधारी असतो की भोग-लीलाओ और दुराचरण का अत्यन्त निर्भीकता और कठोरता के साथ इस कृति मे कवि ने चित्रण किया है और इस प्रकार अध धर्म, सकीर्ण सम्प्रदाय और कपटी साधुओ के पीछे फिरने वाली भोली-भाली निरक्षर जनता की आँखें खोली है।

६ जोधारा रो जस—इस छोटी सी काव्य-कृति को कवि ने 'वीर बत्तीसी' भी कहा है। यह नाराच छन्द में लिखी गई है। इसमे कुल ३२ छन्द हैं। वीरो की वीरता, शौर्य, युद्ध-कौशल और प्राणोत्सर्ग का वर्णन कवि ने अत्यत ओजस्वी भाषा और काव्यशैली मे किया है।

७ प्रताप प्रशसा—इस छोटी-सी कृति मे जोधपुर नरेश महाराजा तख्तसिंह के तीसरे राजकुमार सर प्रताप का प्रशस्ति गान हुआ है। यह कवित्त और दोहा छन्द मे है। इसमे कुल ४३ छद हैं। मारवाड की शासन-व्यवस्था, समाज-सुधार और प्रगति के इतिहास मे सर प्रताप का नाम अविस्मरणीय है। भारतीय सस्कृति, देशभक्ति और क्षत्रियत्व की भावना सर प्रताप मे प्रचुर मात्रा में विद्यमान थी। कवि ने उनके इन समस्त गुणो का इस कृति में वर्णन किया है।

८ छपना रो छन्द—सिलोका छन्द में लिखी गई यह कृति ऊमरदान की एक गौरव कृति है। इसमे कुल २६३ छद हैं। वि स १९५६ में मारवाड मे भयकर दुर्भिक्ष पडा। पानी, चारा और अन्न के अभाव मे पशु और मनुष्य मरने लगे थे। गाँव के गाँव उजड गये। भूख ने ऐसा ताण्डव नृत्य किया कि सारा प्रदेश श्मशान भूमि बन गया। आज भी बहुत से वयोवृद्ध व्यक्ति मारवाड मे विद्यमान हैं जिन्होंने इस दुष्काल के क्रूर स्वरूप को अपनी आँखो से देखा था। मारवाड के इतिहास मे भी इस दुष्काल का अत्यन्त भयावह वर्णन मिलता है। ऊमरदान इस अकाल की क्रूर लीलाओ के प्रत्यक्ष दर्शी थे। भूख से बिलखती मानवता को देखकर कवि की आत्मा सत्रस्त हो गई। मानवता के प्रति कवि के सहज स्नेह और अजस्र करुणा की अभिव्यक्ति इस काव्य मे हुई है। पानी और अन्न के भयकर अभाव ने अमीर और गरीब को, राजा और रक को बराबर कर दिया। प्राणो की ममता लिये हुये सभी एक ही कतार मे मृत्यु पथ पर बैठ गये। इस सारे दुखद यथार्थ का ऊमरदान ने इस काव्य मे अत्यन्त हृदयद्रावक वर्णन किया है। भाषा, छद काव्यात्मकता आदि सभी दृष्टियो से यह कृति अत्यन्त

प्रभावपूर्ण है। आज भी मारवाड के अनेक निवासियो को यह कृति कण्ठस्थ है। व्यावसायिक लोकगायक इसे गाते हैं। वास्तव मे इस कृति ने ऊमरदान को राजस्थानी साहित्य में अमर कर दिया। जन कवि की लोकप्रियता भी वास्तविक अर्थ मे उन्हे इसी कृति से मिली।

ऊमरदान के कृतित्व के इस सक्षिप्त परिचय से स्पष्ट हो जाता है कि न तो इन्होने कोई महान् प्रबन्ध काव्य लिखा और न ऐसी कोई उत्कृष्ट कलाकृति ही साहित्य को दी जिसकी चर्चा राजस्थानी के गौरव-ग्रथो मे की जाती किन्तु जीवन और समाज से सम्बन्धित जिन समस्याओ बुराइयो और असगतियो पर इनकी कलम चली उनका स्वानुभूतिजन्य मार्मिक चित्रण इन्होने अपनी कठोर व्यग शैली में अत्यन्त ईमानदारी और निर्भीकता के साथ किया है। इनकी भाषा लोकभाषा राजस्थानी है। व्रज, उर्दू, फारसी, प्राकृत, अपभ्र श और सस्कृत के तत्सम शब्दो का प्रयोग भी इन्होंने नि सकोच किया है किंतु इन विदेशी और देशी शब्दो को लोकभाषा राजस्थानी की प्रकृति मे ढाल कर। इनके काव्य के अधिकाश छद राजस्थानी के हैं जैसे डिंगल गीत गग्गर निसाणी, सलोका मोतियादाम, लावणी, दोहा, सोरठा (मुक्ता-दाम) आदि। शिखरणी, त्राटक, नाराच पद्धटिका, सवैया, कवित्त, छप्पय, कुण्डलिया आदि सस्कृत और हिन्दी छदो के अति-रिक्त इन्होंने शास्त्रीय और लोक राग-रागनियो पर आधारित अनेक पदो की रचना भी की है।

राजस्थानी के 'वैण सगाई' अलकार का निर्वाह इन्होने खूब ही किया है। अनुप्रास, उपमा और उत्प्रेक्षा की छटा भी इनके काव्य मे देखने योग्य है। इस पर भी ऊमरदान मे कवि और पण्डित का आडम्बर कही भी दिखाई न्ही देता। अपनी भाषा और काव्य-शैली मे वे अत्यन्त सहज और स्वाभाविक है। ईश्वर और धर्म की महिमा का गान कर इन्होंने जीवन के समक्ष स्वस्थ मापदण्ड प्रस्तुत किये। स्वामी दयानन्द, सन्त दरयावजी, सन्त हरिरामदासजी आदि पुण्य-पुरुषो के चरित्र का गान कर इन्होने पवित्र आचरण की

महत्ता समाज के समक्ष रखी। महाराजा जसवन्तसिंह और सर प्रताप का यश-गान कर इन्होंने राजाओं की विलासिता, वैभव और मदान्धता का कीर्तिगान नहीं किया अपितु उनके मानवीय गुणों की प्रशंसा की। असन्त चर्चा, शराब, अफीम, दासीप्रथा, व्यभिचार, भ्रष्टाचार, धर्म की कसौटी, तम्बाकू की ताड़ना, छपनां रो छंद आदि अपनी काव्य-कृतियों में तो वे एक सच्चे क्रांतिकारी जनकवि के रूप में प्रस्तुत होते है। तत्कालीन समाज में व्याप्त आलस्य, अज्ञान, विलासिता, अकर्मण्यता, गरीबी, कुप्रथाओं को देख कर ऊमरदान की आत्मा ने विद्रोह किया था। उस तीव्र विद्रोह को उनके इस काव्य में अभिव्यक्ति मिली है।

राजस्थानी के एक प्रसिद्ध कवि जुगतीदान ने ऊमर-काव्य की महत्ता के सम्बंध में कहा है—

'नर चतुर होय जांणे निपट, आशय ऊमरदान रो'।

दु:ख है कि राजस्थानी के इस अत्यंत लोकप्रिय जनकवि का ठीक-ठीक साहित्यिक मूल्यांकन आज तक नहीं हुआ।

आजकाल रा साध रो, ब्याज वुहारण वेस ।
राज माय झगडै रुगड, लाज न आवै लेस ।।

आधुनिक साधु का वेश उधार रकम देकर ब्याज एकत्र करने वाले व्यापारी का है । वह मूर्ख सरकार (न्यायालय) मे जाकर मुकदमे लडता है । उसे तनिक भी लज्जा नही आती ।

गुरु आप अज्ञानी जुगत न जानी,
चेला मुक्त चहन्दा है ।
करणी रा काचा साध न साचा,
वाचा बहोत बकन्दा है ।
अन्धे को अन्धा धर के कन्धा,
चल कर पार चहन्दा है ।
न गटा निरदावे जमपुर जावे,
खररट खाड खपिन्दा है ।।

स्वय गुरु अज्ञान मे भटक रहे हैं, मोक्षप्राप्ति की साधना का मार्ग वे स्वय नही जानते । कैसी विडम्बना है कि उनके शिष्य मुक्ति की चाह किये बैठे हैं । यह सच्चे साधु नही हैं । इनके कर्म अत्यन्त कच्चे हैं । वस यह वाचाल बहुत है । जैसे अन्धा अधे के कधे पर बैठ कर मार्ग पार करना चाहता है वैसी ही इनकी अवस्था है । गुरु और शिष्य दोनो अधे है । ऐसे असमर्थ और अयोग्य लोग खड्डे मे गिरते हैं और यमपुर पहुचते हैं ।

ग्यानी तन गोरा ठोरम-ठोरा,
चादर मे चिलकन्दा है।

है मदवा हाथी साथरग साथी,
साथी चाल चलन्दा है।

रस्ते मे रस्ता खब्दा खस्ता,
हस्ता खूब हिलन्दा है।

मसकरियाँ मांडे भडवा भांडे,
गुंडा बाघ गछन्दा है॥

यह शरीर से हृष्टपुष्ट और गौरवर्ण हैं। चादर मे इनका शरीर चमकता है और बड़े ज्ञानी बनते है। उन्मत्त हाथी की तरह अपने चेले-चेलियो के साथ ये खूब तेज चाल से चलते है। एक रास्ते पर चलते-चलते दूसरे रास्ते पर चलने लगते हैं। छोटी गर्दन के ये साधु खूब हाथ हिलाते हुए चलते हैं। आपस मे खूब मजाके करते है और प्रसन्न होते है। इनकी बेइज्जती भी होती है। गुण्डे इन्हे कभी-कभी बाँध कर भग जाते हैं।

रमणी बरहीना निरख नवीना,
रामराम रणकन्दा है।

कन्द्रपरा कीटा फबतन फीटा,
भँवरगुफा मणवन्दा है।

कामी अर क्रोधी वेद विरोधी,
परगट नरक पडन्दा है।

भगती नहि भोगा जुगत न जोगा,
अध बिच सन्त अडन्दा है॥

किसी कुँवारी अथवा विधवा नवीन सुन्दरी को देख कर ये दूर से ही रामनाम की रट लगाने लगते हैं। ये कामुक कीडे बडे निर्लज्ज है और सदैव भँवरे की तरह इधर-उधर गूँजते हुये भटकते रहते है। क्रोध और काम-भावना मे डूबे रहते है वेदो का विरोध करते हैं। स्पष्ट है कि ये नरक मे ही गिरेंगे। न ये ईश्वर की भक्ति ही करते है और न ससार को ही भोगते है। न ये सासारिक व्यवहार जानते हैं और न योगसाधना ही इन्हे आती है। ये बेचारे सन्त बीच मे ही अटक गये हैं।

पढिया नहि पाटी घट मे घाटी,
तल ताटी तोडन्दा है।

करणी मे फिरकिर घिरणी मे घिरघिर,
फिरफिर सिर फोडन्दा है।

फिरिया नहि फेरू मारग मेरू,
तेरु पार तिरन्दा है।

बकवाद बिखेरू हिये मे हेरू,
गेरू रग गहन्दा है॥

किसी प्रकार का गुरुज्ञान (अक्षर ज्ञान भी नही) इन्होने लिया नही इनके हृदय मे अज्ञान की अन्धकारमय घाटियाँ बनी हुई हैं। किन्तु पाताल तोडने की बातें करते है। कभी अच्छे कर्म नही किये। जन्म मृत्यु के बन्धन मे फँसे हुये ये बारबार ससार मे जन्म धारण करते है और मरते है और अपना सिर पीटते हैं। मुक्ति सुमेरु के मार्ग पर चलने वाले वापिस इस ससार में नही आते। तैरने मे दक्ष व्यक्ति ही इस भवसमुद्र के पार उतरता है। हे सतो ! तुम केवल बकवास करते हो। गेरुवा रग भी बहुत गहरा चढा रखा है किंतु अपने हृदय का निरीक्षण करो।

(सन्त प्रसन्त सार' से)

बाम बांम बक्ता बहे, दाम दाम चित देत ।
गाम गाम नाखे गिडक, राम नाम मे रेत ॥

पथभ्रष्ट झूठे सत रात दिन नारी-नारी चिल्लाते रहते हैं। इनके ध्यान मे धन ही रहता है। ये कुत्तो की तरह गाँव-गाँव भटकते है और रामनाम पर मिट्टी डालते हैं।

अ मिळ्ताई अेठ झूठ परसाद झिलावे,
कुल मे घाले कलह माजनो घूड मिळावे।

कहे वखेरा कुत्ता देव करणी ने दाखण,
ऊठ सँवारे अधम मोड पर चावे माखण।

मुख राम-राम करज्यो मती, म्हारो कह्यो न मेटज्यो ।
चारण वरण साधा चरण, भूल कदे मत भेटज्यो ॥

यह झूठे सत मिलते ही अपने भक्तो को जूठा प्रसाद देते हैं। जिस परिवार मे ये पहुँचते हैं वहाँ की शाति भग कर देते हैं और अपना अपमान करवाते हैं। अनुभवी पूर्वज कह गये है कि ये सत कुत्तो के समान हैं और देव सदृश आचरण को नही देखते। प्रात-काल उठते ही ये पापी मोडे माखन खा जाते हैं। कवि ऊमरदान कहते हैं कि हे चारण जाति के लोगो! इन दुष्ट साधुओ से कभी राम राम मत करना और न कभी भूल कर ही इनका चरणस्पर्श करना अर्थात् ये पापी सम्मान के अधिकारी नही हैं।

खल तिणरी खोटी करे, पापी अन जल पाय ।
मोको लागा मोडिया, चेली सूं चिप जाय ॥

ये दुष्ट उन लोगों की भी निन्दा करते हैं जिनके यहाँ भोजन करते हैं। अवसर आने पर ये मोडे (साधु) अपनी चेली से ही प्रणय सम्बन्ध स्थापित कर लेते हैं।

मारग मे मिल जाय धूड नाखो धिक्कारो ,
घर माही धुस जाय लार कुत्ता ललकारो ।

झोली माला झाड रोट गिडका ने रालो ,
दो जूता री देय करो मोडा रो कालो ।

कुल न्यात हीण फीटा कुटल, जिके विगाडू जात रा ।
मम सैण श्रात सुणज्यो मती, रहण न दीज्यो रात रा ।।

ये दुष्ट साधु यदि कही रास्ते मे मिल जाये तो इनकी खूब भर्त्सना करनी चाहिये। यदि घर मे घुस जाये तो इनके पीछे कुत्ते लगा देने चाहिये। इनकी झोली मे जो रोटियाँ हो उन्हे छीन कर कुत्तो को खिला देनी चाहिये। इन्हे जूतो से पीट और काला मुँह कर शहर के बाहर निकाल देना चाहिये। ये कुल और जाति से हीन अत्यत कुटिल और समाज को भ्रष्ट करने वाले होते है। हे मेरे मित्रो ! इनकी बातो को कभी मत सुनना और इन्हे अपने यहा कभी रात मे मत रखना।

साडा ज्यू ए साधडा, भाडा ज्यू कर भेस ।
राडा मे रोता फिरे, लाज न आवे लेस ।।

ये दुष्ट साधु सांडो की भाति हृष्ट पुष्ट होते हैं और विदूपको की सी वेशभूषा धारण कर स्त्रियो मे भटकते फिरते हैं। इन्हे तनिक भी लज्जा नही आती।

बोदा रे आडा वहे, सोदा मिलने सेग ।
भूकोडा भँवता फिरे, लाडू खावे लेग ।।

सभी दुष्ट मिलकर दुर्बलो के मार्ग मे वाधाय पैदा करते हैं। भूखे लोग बेचारे यो ही भटकते फिरते है और दुष्ट और ताकतवर माल खाते हैं।

मारवाड रो माल मुफत मे खावे मोडा,
सेवक जोसी सेग गरीवा दे नित गोडा।

दाता दे वित दान मोज माणे मुरसडा,
लाखा ले धन लूट पूतली पूजक पडा।

जटा कनफटा जोगटा, खाखी पर धन खावणा,
मरुधर मे कोडा मिनख, करसा एक कमावणा॥

इस मारवाड प्रदेश की सम्पत्ति ये मोडे मुफत मे ही खा रहे हैं। जोशी, सेवग [मारवाडी की एक जाति विशेष जो जैनियो की याचक होती है] और अन्य अनेक जातियो के लोग गरीवो को लूट रहे हैं। दानी दान देते हैं और ये मुसण्डे मौज करते हैं। मूर्ति पूजा करने वाले पण्डे लाखो का धन धर्म के नाम पर लूटते हैं। जटा-धारी कनफटे योगी, वैरागी, और जोगीडे पराया धन खा रहे हैं। इस मारवाड मे केवल किसान कमाते हैं शेष सभी लोग निकम्मे हैं।

साधा जोडे साधडा, साधा तोडे सग।
दरसण दे लेवे दिरब, आदा भीत अनग॥

ये दुष्ट साधु परिचय स्थापित करते हैं और साधुओ के सग-ठनो और दलो को छिन्न भिन्न कर देते हैं। ये नितात अधे और मूर्ख अपने भक्तो को दर्शन देकर द्रव्य एकत्र करते हैं।

['खोटे सन्ता रो खुलासो' से]

आवे मोड अपार रा, खावे वटिया खीर।
बाई कहे जिण वेन रा, वणे जवाई वीर॥

ये दुष्ट साधु भारी सख्या में आते हैं और घी से लथपथ रोटियां और खीर खाते है। जिस स्त्री को बाई कह कर सम्बोधित

करते हैं, उसी से प्रणय सबध स्थापित कर उस घर के एक अर्थ मे दामाद बन जाते है।

गुरु गूगा गेला गुरु, गुरु गिडका रा मेल।
रूम रूम मे यू रमे, ज्यूं जरबा मे तेल ॥

इन मूर्ख और दुष्ट साधुओ के गुरु भी गूगे, पागल और कुत्तो के मल के समान गदे होते हैं। जैसे जूतो पर तेल लगाने से वह उनमे पूरी तरह से रम जाता है, उसी प्रकार मूर्ख साधु समाज के रोम-रोम मे ये गुरदेव रमे हुये है।

सत बात कहे जग मे सुकवि,
कथ कूर कथे ठग सो कुकवि।

सत कूर सनातन दोय सही,
सत पथ वहे सो महन्त सही ॥

सुकवि ससार मे सदैव सत्य कथन करते है। जो असत्य कथन करते है वे कुकवि होते है। सत्य और असत्य ये दो सनातन तत्व हैं। वही व्यक्ति महान है जो सत्य के पथ पर चलता है।

तन झीनिय चादर तानन को,
मन आस बधे सुख मानन को।

मिळ वाह कहे धुन मोरन की,
चित चाह रहै धन चोरन की ॥

साधुवेश धारण कर शरीर को ढकने के लिये पतली चादर धारण किये हुये हो किंतु मन मे सुख भोगने की इच्छायें और आशाये निरतर बढ रही हो। मोर की मधुर ध्वनि सुनकर सम्मिलित स्वर मे चाहे उसकी प्रशसा करे, किंतु मन मे सदैव

पराये धन को चुराने की इच्छा बनी रहे तो फिर यह साधुत्व किस काम का ?

चटका मटका लटका चुगली,
बस अन्तर भाव छटा बुगली।

अनुरंजन खंजन अंखन में,
झपके लपके त्रिय झंकन में॥

शरीर में चटक मटक हो, हाव-भाव में नखरे हों, बगुले की भाँति मन में कपट हो और दूसरों की सदैव निन्दा करते रहते हों। खंजन पक्षी के समान सुन्दर नेत्रों में अनुराग हो और सदैव सुन्दरियों को देखने के लिये लपकते-झपकते रहते हों तो फिर साधु-वेश का क्या अर्थ ?

['असन्ता री आरसी' से]

अमोल तोल मोल के प्रचोळ चोळ अंख के,
अडोल डोल कन्ध के विडोळ ने असंक के।

विशाल भाल कन्धरा रसाल छत्ति पुत्थरे,
रहें पदग्ग रेखलें, मुदेखते अरी डरे॥

पृथ्वी के इन वीरों की सेना का प्रत्येक वीर ताल में अमूल्य है। उसकी आँखों में शौर्य की प्रगाढ़ लाली है। वह सुदृढ़ और निर्भय है। उसके कन्धे और ललाट विशाल हैं। यह रसवन्ती धरती के वीर सैनिकों का यूथ है। इनके पद-चिन्हों को देखकर ही शत्रु भयभीत होते रहते हैं।

प्रचण्ड बाहुदण्ड के भये प्रचण्ड पिंड में,
घमंड को घटाय दे मिले न सो मुमण्ड में।

डरे न सिंह डोलते स्व डोलते डरावने,
करोल टोल-टोल कोल-कोल ते करावने ।।

इन वीरो के शरीर अत्यन्त प्रचण्ड हैं। इनकी भुजायें विशाल और अत्यन्त शक्तिशालिनी हैं। पृथ्वी पर ऐसा कोई व्यक्ति नहीं है जो इनके स्वाभिमान और गर्वोन्माद को नष्ट करदे। यह सिंहों के विशाल शरीर को देख कर भी भयभीत नही होते। इनका विशाल शरीर ही दूसरों को भयभीत करने वाला है। रणांगन में घिरे हुये वीरों का यह उसी प्रकार शिकार करते हैं जिस प्रकार सूअरों को घेर कर कुछ लोग लाते हैं और फिर शिकारी उनका शिकार करते है।

प्रगल्भ कंठ पेल देत कंठ कंठिराव को,
दुहत्थ हत्थ ठेल देत हल्थले प्रदाव को।

उन्हे न भीत और अभीत ह्वै न त्या अगे,
भगे न वाह जान दे नबाह नावरे भगे ।।

ये वीर शेर के कठोर कण्ठ को भी मसोस देते हैं। अपने सशक्त दो ही हाथों से ये उसके भयकर आक्रमण का सामना कर उसे परास्त कर देते हैं। इन वीरो को किसी भी प्रकार का भय नही होता। ये शत्रु के समक्ष सदैव अभय रहते है किन्तु इनसे शत्रु सदैव डरते रहते है। ये प्राण दे देते हैं किन्तु कभी युद्ध भूमि से भागते नही है।

निनाद बन्ध अन्ध के दुकन्ध भोटते नदे,
महान लंठ-संठ के कुकंठ घोटते मदे।

हला-कुश्रेल सेल ते सदा उथेलते हले,
चितार पेट भेट के चपेट मेलते चले ।।

युद्ध भूमि में भयंकर हुंकार करके ये वीर मदान्ध शत्रु के शरीर के वन्ध और कन्धे तोड देते है। प्रचण्ड शरीरवाले शत्रु के कण्ड एक क्षण में मसोस देते है। अत्याचारी शत्रु के शरीर को भाले की नोंक से उछाल देते है। अपने पेट का स्मरण कर (जिसका नमक खाते हैं उस स्वामी के लिये) एक थप्पड़ में शत्रु को मार कर अपने स्वामी के ऋण से मुक्त होते है।

['जोधां री जस' से]

मुरधर में पातल् मरद, इयको रतन अमोल।
लोकां ने तो लादसी, मारेयां पाछे मोल॥

मारवाड में हे सर प्रताप ! तुम अकेले ही मर्द वहुमूल्य रत्न के समान पैदा हुये। तुम्हारी मृत्यु के पश्चात् ही ससार तुम्हारा मूल्य जान पायेगा।

ओ लखियो पातल अवस, सिरे धर्म इक सांम।
आप बुराई लै अखिल, करे भलाई कांम॥

हे प्रताप ! तुमने यह अवश्य पहचान लिया कि एक धर्म ही इस संसार में सर्वश्रेष्ठ है। सभी प्रकार की बुराइयाँ और अपमान अपने ऊपर लेकर तुम सदैव भलाई का काम करते हो।

सूतो लख संसार सब, पातल् सूं पुल्जाय।
मरण-दशा में मइंद रे, जीव न नेड़ो जाय॥

यह समझ कर कि वह (प्रताप) अभी सो रहा है सारा संसार प्रताप के आतंक से प्रभावित होकर उससे टल कर निकलता है। उदाहरणार्थ सिंह के मरने के पश्चात् भी किसी प्राणी को उसके निकट जाने की हिम्मत नही होती।

साचो तूं तूं सूरवो, तूं दाता दै त्याग।
पौहुमी में पातल् प्रसिद्ध, खलां विडारण खाग॥

तुम सच्चे शूरवीर हो, तुम दानी हो और दान [चारणों को राजपूतो द्वारा दिया जाने वाला दान त्याग कहलाता है] देते हो। तलवार से दुष्टों का विनाश करने वाले हे प्रताप ! तुम पृथ्वी पर प्रसिद्ध हो।

जस पातल्रो जगत मे, श्रो भरियो श्रणपार।
नीमण निज पावे नही, पोथी लिखियां पार॥

प्रताप का यश इस ससार में अनन्त रूप मे फैला हुआ है। पुस्तक में उस सारे व्यापक यश का वर्णन नही हो सकता।

['प्रताप प्रशंसा' से]

काछ दृढा कर बरखणा, मन चगा मुख मिट्ठ।
रण शूरा जग बल्लभा, सो हम चाहत दिट्ठ॥

लगोट के पक्के अर्थात् ब्रह्मचर्य का दृढता से पालन करने वाले, अपने हाथो से दान की वर्षा करने वाले, मधुर भाषी और स्वस्थ मन वाले, ससार के प्रिय ऐसे रणशूरो को मैं देखना चाहता हूं।

रंग लक्षण रजपूत बात मुख भूठ न बोले,
रंग लक्षण रजपूत काछ परनार न खोले।

रंग लक्षण रजपूत न्याय धर तुल निज तोले,
रंग लक्षण रजपूत अडर केहरि इम डोले।

परजा पालण पुत्र सम केहण प्रांण कपूतरा,
मादक अलीण मेले न मुख प्रिय लक्षण रजपूतर रा॥

अपने मुँह से कभी भूठ न बोलने वाले राजपूत को धन्य है। किसी पराई नार पर मोहित न होने वाले राजपूत को धन्य है। न्याय की तुला पर पाप-पुण्य को तोलने वाले राजपूत को धन्य

है। सिंह की भाँति निर्भय विचरण करने वाले राजपूत को धन्य हैं। प्रजा का पालन पुत्र के समान करे, कपूतों के प्राण ले ले और कभी मादक पदार्थ और मांस का सेवन नहीं करे—राजपूत के ये लक्षण सबको बड़े प्रिय होते है।

पढ़ै फारसी प्रथम म्लेच्छ कुल में मिल जावे,
अंगरेजी पढ़ अवल, होटलां में हिल जावे।

पच्छ ग्रहे प्रालब्ध नहीं पुरुषारथ नेड़ो,
चोखे मत नहि चाय भाय आवे मत भेड़ो।

नित असल त्याग सीखे नकल, छाज न ह्वै ह्वे छाणणी।
कुलखणां मांय मोटी कसर, आदत खोटी आंणणी।।

फारसी भाषा पढ कर ये मुसलमानों के साथ उठने-बैठने लगते हैं। अंग्रेजी सीख कर ये होटलों में भी खूब जाने लगते हैं। प्रारब्ध का समर्थन कर तनिक भी उद्योग नहीं करते। इन्हें अच्छे विचार कभी अच्छे नहीं लगते, सदैव गन्दे विचार ही इन्हें सुहाते हैं। अपनी वास्तविकता का त्याग कर ये दूसरों की नकल करते हैं, इनके पास विवेक का छाज अथवा चलनी नहीं होती। इन कुलक्षण वालों में यह एक सबसे बडी कमी है कि ये दूसरों की नकल करने के अभ्यासी है।

दारू मांस दपट्ट, अमल अणमाप अरोगे,
चमड़पोस रे चौठ, भँवर मादक सुख भोगे।

परणीं ने परहरे, गेर सुत गोदी धारै,
जोबन मद में जोध, सटक सुरलोक सिधारे।

दश दिकान तीतर सुभट, कुरजां चिड़ी कबूतरा,
मायां सूं नित उठ भिड़े, परम धरम रजपूतरा।।

ये शराव, मास और अमल का खूब ही सेवन करते है। हुक्के के चिपके ही रहते हैं और अन्य अनेक मादक-द्रव्यो का सेवन कर आनन्द लेते है। अपनी विवाहिता पत्नी का त्याग कर ये किसी अन्य के पुत्र को गोद लेते है। यौवन के नशे मे, भोग-विलास में अपने स्वास्थ्य को नष्ट कर ये शीघ्र ही स्वर्गवासी हो जाते हैं। खरगोश, तीतर, कुरजा, कबूतर और चिडियो के शिकार मे अपनी वीरता दिखाते है और अपने बन्धुओ से प्रतिदिन लडते है। उपरोक्त लक्षण ही आज राजपूत के परम धर्म बन गये हैं।

[राजपुरुषा रा आचरण]

नसा काड लीवी नसा, नसा कियो सब नास ।
नसा न्हाखिया नरक मे, अडी नसा मे आस ॥

मादक द्रव्यो के नशे ने शरीर की नसें निकाल दी, इस नशे ने सर्वस्व नष्ट कर दिया। नशे के कारण यह जीवन नारकीय बन गया किन्तु अब भी आशा नशे मे ही अटकी हुई है।

समज तमाखू सूगली, कुत्तो न खावे काग ।
ऊँट टाट खावे न आ, अपणो जाण अभाग ।
अपणो जाण अभाग गजब नहिं खाय गधेडो ।
शूकर भू डी समज निपट, निकळै नहिं नडो ।
बुरा पशु बच जाय अहरनिस खाय न आखू ।
वडा सोच रो बात तिका निर खाय तमाखू ॥

कुत्ता भी तम्बाकू को गन्दी समझ कर नही खाता। इसे ऊँट भी अखाद्य समझता है। हे तम्बाकू खाने वाले यह तेरा दुर्भाग्य ही है। आश्चर्य है कि इसे गधा भी नही खाता। सूअर इसे गन्दी समझकर इसके निकट से भी नही निकलता। रात दिन गन्दे जानवर भी इससे वचते रहते हैं। चूहे भी इसे नही खाते। वडे दुख की वात है कि इसे मनुष्य खाते है।

पिये तमाखू कापुरस, सापुरसां हिय साल,
सालै निसदिन समभरणां, चालै चाल कुचाल।

चाल् खोटी चलै चूकग्या नर चतुर,
अहह् सोचैं न प्रति दुर्व्यसन दुसह् डर।

टुलक आखू अकल धरो घर टीवरणां,
पुरस कापुरस जे तमाखू पीवरणां॥

निकम्मे व्यक्ति तम्बाकू पीते हैं। सत्पुरुषों को इससे हार्दिक कष्ट होता है। समझदार लोगों को तो यह तम्बाकू रात-दिन बुरी लगती है। तम्बाकू पीने की आदत कुमार्गियों की होती है। बुद्धिमान प्राणी होते हुये भी मनुष्य भटक गया। दुख है कि वह इस दुर्व्यसन की बुराइयों पर विचार नही करता। उनकी बुद्धि रूपी चूहे उनके स्वयं के घर की नींवों को खोद कर गिराते हैं। वे पुरुष निकम्मे हैं जो तम्बाकू पीते हैं।

कंथा तू कांई करे, हाय तमाखू हेत।
टका एक री टाट में, दिन ऊगांई देत॥

हे प्रियतम! तम्बाकू पीने के लिये आप यह क्या करते हैं। प्रातःकाल होते ही एक टका (दो पैसे का एक सिक्का) आप नित्य खर्च कर देते हैं।

पल-पल मांही पिये चूंपकर चिलम्या चाडे,
धन री कर-कर धुवों कंई इरण मांही काडे।

आंरणे रोज उधार करज कर टाट कुटावे,
निज तन रो कर नास ओगरणी सास उठावे।

बुढापे संग्या होवे बुरी, जग में भूंडो जीवरणों,
हजारां मांय ओगरण हुवे, परण वी होको पीवरणों॥

एक-एक क्षण मे चिलम भर कर और जला कर ये पीते हैं। धन का इस प्रकार धुआ उडाने से क्या लाभ मिलता है ? प्रतिदिन तम्बाकू उधार मँगाते है और इस प्रकार कर्ज का बोझ सर पर बढाते है। शरीर का विनाश कर श्वास रोग के शिकार बनते हैं। वृद्धावस्था मे इनकी अवस्था बहुत ही बुरी हो जाती है। ससार मे फिर जीवित रहना भी अशोभनीय हो जाता है। इसमे हजारो अवगुण है फिर भी वे हुक्का पानी नही छोडते।

['तमाकू री ताडना' से]

गैलै वहता गुड पड्या, औले अमली आप।
लै लै करता लागिगो, पैलै भव री पाप॥

राह चलते, देखो, अमलदार अपने आप ही नीचे गुड गया। अमल लो, अमल लो' कहते हुये ही वह परलोक वासी हो गया। अर्थात् अमल खाने वाले की मृत्यु इतनी अनायास हो जाती है।

समल हुवा कपडा मकल, भमळ हुवो घट भग।
कमल बदन कुम्हळायगो, अमल खायगो अग॥

सारे कपडे मैले हो गये सारा शरीर विकृत हो गया। कमल के समान सुन्दर मुख मुर्झा गया। देखो, अमल सारे अगो को खा गया।

भेख बिगाडै जगत नै, जगत बिगाडै भेख।
ओ लै बाबा अमलडो, दुनिया मे सुख देख॥

साधुओ का वेष ससार को बिगाड देता है और ससार साधुओ के वेश को बिगाड देता है। हे बाबा! अमल का सेवन करो और ससार के सुखो का उपभोग करो।

करम फूटगा कहो कवणनें जायर केवा,
दुबद्या माहे दुसह रात दिन धुकता रेवा।

जोय-जोय जी जळे कोय नहि लागे कारी,
इष्ट वडेरा असल नसल वीगडगी न्यारी।

नाग रा झाग पीवे निलज, झाक आग चख मे झडे।
अगरेज मुलक दावरण अडे, ऐ जूवा सू आथडे॥

हमारे तो भाग्य ही फूट गये। कहो, अब किसे जाकर कहे? रात दिन असह्य दुविधा मे भीतर ही भीतर जलते रहते हैं। इन्ह देख-देख कर हृदय जलता है, कोई उपचार नही हो पाता। इष्ट नष्ट हो गया, पूर्वजो के प्रति सम्मान का भाव नही रहा और मूल नस्ल ही विकृत हो गई। साँप के विष के समान घातक अमल का ये निर्लज्ज सेवन करते हैं। कभी-कभी हुक्के में झांकते समय इनकी आंख मे आग की चिनगारी भी गिर जाती है। अंग्रेज तो मातृभूमि को अधिकार मे करने के लिये डटे हुये हैं और ये अमल खाने वाले अपने शरीर मे पडी जूओ से ही लड रहे है।

पीस-पीस पीसणो हाथ घस गया हाथा सूँ,
लाय लाय ईंनणो बाल उड गया माथा सूँ।

सीव सीव सीवणो नेण आदा हुवा न्यारा,
कात कात कातणो रात रा गिण-गिण तारा।

ओ अमल पूरवू कठा सुँ, लाऊ काईक लाड मे।
परबात पिहर जास्यू परी, खावद पडज्यो खाड मे॥

आटा पीसते-पीसते हाथ घिस गये। इंधन का भारा जगल से लाते-लाते सिर के बाल उड गये। कपडो की सिलाई करते नेत्रो की ज्योति चली गई। तमाम रात आकाश के तारे गिनती हूँ और सूत कातती हूँ। अब हे प्रियतम! बताओ, मैं तुम्हे कहाँ तक अमल लाकर खिलाऊँ? इस प्यार मे मुझे क्या मिलता है? प्रभात होते ही मैं तो अपने पीहर चली जाऊँगी। मेरे पति चाहे खड्डे मे गिरें।

आजे मीत अमल्ल खग्ग-बग्गा खराकारा,
पिड सीधू सुर पडै, भडा काना भराकारा।

खुरिया करता खूद हुवै तुरिया होकारा,
घिरिया दुसमन घडा तिकरा बेला तेजारा।

सो समै गई सुपना सद्रस सोचाई सब सुकविया।
विरा खबरि रग दे-दे वृथा, कतल करो मत कुकविया ॥

हे मित्र अमल ! तलवारो की टकार के साथ आना। वीरो के कानो मे पुन सिन्धुराग के स्वर सुनाई देने लगें। अपने पैरो से जमीन खोदते हुये घोडे हिनहिनाने लगे। जब शत्रु आकर घेर ले तब और भी तीव्रता से आना'। कवि ऊमर कहते हैं कि हे सुकवियो ! मन मे विचार करो। इस प्रकार अमल का सेवन करने के लिये राजपूतो को उत्साहित करने का समय स्वप्न की भाँति चला गया है। हे कुकविया ! बिना समय को पहिचाने, व्यर्थ मे वाह-वाह कह कर राजपूतो की हत्या मत करो।

['अमल रा ओगरा' से]

रग देऊँ वा नरा वाछु रा पूरा काठा,
रग देऊँ वा नरा माछु देवरा हिय माठा।

रग देऊँ वा नरा, घर छाती रा शूरा,
रग देऊँ वा नरा, प्रगट वाता रा पूरा।

आखिया लाज लीधा अडर, सारा काज सुधाररा।
मादक अलीरा मेले न मुख, वारा लेऊँ वाररा ॥

मैं उन पुरुषो को शावास देता हूँ जो लगोट के मजबूत हैं। मैं उन पुरुषो को शावास देता हूँ जो कभी घर आये याचक को दान दने से इन्कार करने मे फुर्ती नही दिखाते अर्थात इन्कार नही करते।

उन पुरुषों को मैं शाबास देता हूँ जो धैर्यवान है और साहसी हैं। उन पुरुषों को मैं शाबास देता हूँ जो साक्षात् [वचनों को निभाने वाले हैं। आँखों में जिनके निर्भयता और लज्जा है, जो सभी कामों को सफल बनाते है और जो भूल कर भी मादक पदार्थ और मांस का सेवन नहीं करते। मैं ऐसे पुरुषों पर न्योछावर होता हूँ।

[स्फुट]

विभचारी विभचार कर, कुल् ध्रम खोय कुमोज।
खूट गया इण खलक में, खुड़को हुवो न खोज ॥

व्यभिचारी लोग अपने व्यभिचारी आचरण से सस्ते मनो-रंजन के द्वारा कुलधर्म को नष्ट कर इस संसार से ऐसे गये कि न तो उनके जाने की आहट हुई और न यह पता लगा कि वे किधर गये।

जिण लागां हुय जाय न्यायकारी अन्याई,
·जिण लागां हुय जाय भाई रो दुसमण भाई।

जिण लागां हुय जाय बुद्धि वाळो वेबुद्धी,
जिण लागां हुय जाय सुद्धि वाळो वेसुद्धी।

पिण्ड रे आंण लागां पछे पड़े सीस पेजार री,
मेट रे मेट भोगा मरद, बुरी फेट विभचार री ॥

जिस व्यभिचार के असर से न्यायी अन्यायी हो जाय, भाई-भाई का शत्रु बन जाय, ज्ञानवान मूर्ख हो जाय, शुद्ध आचरण वाला अशुद्ध आचरण करने लगे और आदत पड जाने पर जब आदमी के सिर पर जूते पडने लगें—तब उसके असर को तत्काल ही मिटा देना चाहिये। हे भोले मनुष्य! व्यभिचार का असर बड़ा घातक होता है।

पिंड री गई प्रतीत मांण मिटग्यो मरदां में,
ग्यांन मिळ गयो गरद दांम रुळग्यो दरदां में।

लात घूथ लाठियाँ वणी आछी वरषा वल ,
जूत भेट ह्वा जठे नाक हुइग्यो निछरावल ।

विभचार माद पायो विभो, जाता जुगा न जावसी ।
नित स्वाद लियो परनार मे, याद घणा दिन आवसी ॥

मन का विश्वास खो दिया और पुरुषों मे सम्मान नही रहा। ज्ञान मिट्टी मे मिल गया और धन नष्ट हो गया। लातें, घुस्से, लाठियो की अच्छी वर्षा होती है फिर जहाँ जूतो का सामना करना पडता है वही नाक तो न्योछावर हो गया अर्थात् इज्जत चली गई। जो वैभव व्यभिचार मे प्राप्त हुआ है वह युगो तक नही जायेगा। पराई स्त्रियो का जो आनन्द लिया है, वह बहुत दिनो तक याद रहेगा।

['विभचार री बुराई' से]

रजपूती रैई नही, पूगी समदा पार ।
पातरिया रा पाद मे, रीझ गया सरदार ॥

क्षत्रियत्व अब इस देश मे शेष नही रहा, वह तो समुद्र पार चला गया। अब सरदार लोग वेश्याओ की अपानवायु की दुर्गन्ध पर ही मुग्ध हो रहे है।

रड पोखा रा राज मे, रुळगी भूखा रेत ।
सू का निस सीरा करे, दण्ड न चूका देत ॥

वेश्या-प्रेमियो के इस शासन मे, प्रजा भूख से मर गई। रिश्वत लेने वाले सदैव हलवा बना कर खा रहे है और अपराध करने वालो को किसी प्रकार का दण्ड नही मिल रहा है।

[स्फुट]

कर-कर वाडा कपट रा, धाडा पाडण धाम ।
दिल चीरण झाडा दिये, भाडा वाली भाम ॥

किराये की यह स्त्री [वेश्या] धोका दे-दे कर, घर की गम्पत्ति पर डाका डालने वाली और वशीकरण मन्त्र द्वारा हृदय को चुराने वाली होती है।

अंग घणा आलंगियो, अधर घराणी अैंठ ।
नर मूरख जाणै नही, पातर री आ पैंठ ॥

अनेक लोगो द्वारा चुम्बित होने के कारण वेश्या के अधर जूठे होते हैं किंतु मूर्ख पुरुष उसके अगो का गाढा - लिंगन करते हैं। वे वेश्या की इस प्रतिष्ठा को नही पहचानते।

कोड गुणी खातर किया, पातर न करै प्रीत ।
अरथ हेत अकुलीन नूं, माडैई करलै मीत ॥

गुणियों द्वारा सम्मान करने और उत्साह दिखाने पर भी वेश्यायें उनसे प्रेम नही करती किंतु धन के लिये किसी कुलहीन से वे जबरदस्ती मित्रता करने लगती है।

विहद कोर गाटा बणी, पातर रै पोसाक ।
परणी फाटा पूंगरण, बैठी फाडै बाक ॥

वेश्या की पोशाक बेहद गोटे किनारी की बनी होती है किन्तु विवाहित पत्नी बेचारी फटे कपडे पहने और मुंह फाडे बैठी रहती है।

['दासी द्वादशी' से]

ऊसर भूमि कसान चहै अन,
तार मिले नहिं ता तन ताई ।

नारि निपुंसक सो निसि मे निज,
नेह करै रतिदाम तो नाई ।

मूरख सूम डफोळन के मुख,
काव्य कपोल कथा जग कांई ।

बाजति रैं तो कहा वित लै बस,
भैंसे के अग्र मृदंग भलांई ॥

ऊसर भूमि से यदि किसान अन्न की आशा रखे तो व्यर्थ है, उसे अन्न का एक दाना भी नही मिलता । पुत्र प्राप्ति के लिये यदि कोई स्त्री किसी नपुसक से रात मे स्नेह करे तो वह भी व्यर्थ है, नपुसक सन्तान उत्पन्न नही कर सकता । मूर्खों, कजूसो और विवेक-हीनो के सामने काव्यपाठ करना व्यर्थ मे गला फाडने के समान है । और यदि अर्थ - प्राप्ति के लिये करना ही पडे तो भैंस के समक्ष मृदग बजाने के समान ही है ।

छंद अलकृत छांह छुवे नहिं,
बाह गहै नहिं पुस्तक बाचै ।

लक्षक लक्ष्य कहा अविधा कथ,
वाच्यरु वाचक नाच न नाचै ।

व्यगरु व्यंजक ना रस वृत्तिय,
रीत न दूपरा दूपरा राचै ।

डौल डफोळन तोल यथातथ,
जाचक पौल वृथा जिन जाचै ॥

जिन लोगो ने छद और अलकार की छाया का भी कभी स्पर्श नही किया अर्थात् जिन्हे अलकार और छन्दो का तनिक भी ज्ञान नही, जो कभी पुस्तक उठा कर पढते नही, जिन्हें लक्षणा और अविधा के कथन, वाच्य और वाचक का अर्थ नहीं आता, व्यग, व्यजना, नवरस, वृत्तियां, रीतियां और काव्य - दोषो का जिन्हें

सूनी ढाणी मे सेठाणी सोती ।
रेंगी विणियाणी पाणी नै रोती ॥

कुलीन घर की सुन्दर सेठानिया बारीक वस्त्र पहने हुये है। उनकी वेणी की अलकें नागनियो की भाति है किन्तु दुर्भाग्य से आज अकाल के कारण ये सूनी ढाणियो मे (छोटे छोटे घास-फूस के झोपडो वाले गाव) पडी हुई हैं। महाजनो की औरतो को पीने का पानी नही मिल रहा है।

वैरण रसणा वस असणा तनताई ।
आभो आगण री अन मांगण आई ॥

साम्प्रत पूछो नह किण ही कुसळाता ।
अन अन करतोडी मरगी अनदाता ॥

यह बैरन जीभ प्यास से तनतनाने लगी। घर के आगन की शोभा [स्त्रियो बालक आदि] अन्न की भीख मांगने के लिये द्वार-द्वार भटक रही है। किसी ने आज तक इनकी कुशलता नही पूछी। अन्न-अन्न करते हुये यह भूखे ही मर गये।

भूखी की जीभे सिसकारा भरती ।
नाखै निसकारा धीमे पग धरती ॥

मुखडो कुम्हळायो भोजन बिन भारी ।
पय पय करतोडी पोढी पिय प्यारी ॥

यह क्षुधा-पीडित स्त्री केवल सिसकियां भर रही है, यह क्या खाये ? धीमे-धीमे चलती हुई यह केवल निश्वासें छोड रही है। भोजन के अभाव मे इसका मुख-मण्डल मुर्झा गया है। पानी-पानी पुकारते हुये प्राणप्यारी ने प्राण दे दिये।

हा उण इच्छा पर भिच्छागत हाणी ।
जग मे दैविच्छा किण ही नह जाणी ॥

वादल् वीजलियां नभ में नँहि नैड़ी ।
भेजो भराणायो भळकी पुल भैंड़ी ॥

भगवान् की इच्छा के समक्ष भिक्षा की गति परास्त हो गई। ससार में भगवान् की इच्छा को कोई नही जान पाता। आकाश में कही पर भी बादल और बिजलियाँ नही दिखाई देते। दुर्भाग्य की घडी को देख कर सिर चकराने लगा।

फूंकरा नवकोटी झंडा फरहरिया ।
घर-घर जाती-रा टामक घरहरिया ॥

खाली जळ धरती जळहर जळ खूटो ।
ततखिण जीवण विण जगजीवण तूटो ॥

मारवाड (नवकोटी) को नष्ट करने के लिये अकाल के झण्डे फहराने लगे। घर-घर विनाश के नगाडे बजने लगे। धरती पानी से रिक्त हो गई, बादलों का पानी भी समाप्त हो गया। तत्काल पानी की व्यवस्था के अभाव में संसार से जीवन समाप्त होने लगा।

हा हा दुखदाई छपनां हतियारा ।
सज्जन सुखदाई सावल् सथियारा ॥

निसनह निसनायक नभ नँहि नखताळी ।
करदी पूनम नें अमावस काळी ॥

सज्जन व्यक्ति और पवित्र मन वाले साथी सुख देने वाले होते हैं। किन्तु हे छपना ! [स. १९५६ के अकाल] तुम तो दुख देने वाले हत्यारे हो। आकाश में स्नेह रहित चन्द्रमा फीका-फीका है, एक भी नक्षत्र दिखाई नहीं देता। पूर्णिमा को तुमने काली अमावस्या बना दिया।

डाढा तामाडै केरडिया ८
रोटी पाणीनै टीगरिया

चित पर धोरारव आकर ४२५
घर-घर नरनायक लायक

पशु भूख की पीडा से शोर कर रहे चिल्ला रहे हैं। रोटी और पानी के लिये ... है। हृदय मे शोक-ध्वनि उठ रही है। घर-घर पुरुष अकाल की भयकरता को देखकर घबरा ...

वावर वीखरिया ओढणिये
डाबर नयणा री टावर वय

नवला नगाती सगाती
निरणी नव अगा गगाजळ

जिसके वाल विखरे हुये हैं, रो रही है। यह सीधी-सादी स्नेहमयी नारी नितान्त भूखी ... पवित्र गगाजल की भाँति अश्रुपात हो रहा है।

सोनू रूपो तन पीठी सुपनै
छल्ले वीटी बिन दीठी छपनै

काजल टीकी बिन फीकी
सधवा विधवा बिच विवरो नहि

स्वप्न मे ही जो शरीर पर उबटन किये ... के आभूषण धारण किये रहती थी, वे इस ... अगूठी के दिखाई दे रही हैं। इनके नेत्र-कोर काजल और टीकी के बिना फीके दिख रहे हैं। ... के बीच मे आज अन्तर करना कठिन हो गया है।

सिद्धा सिद्धाई धरणी मे धसगी,
भोपा भोपाई फाँफाँ मे फसगी।
भूठा जोतसिया जोतिस की भूठी।
करसा कळपाया बरसा नह वूठी॥

सिद्ध पुरुषो की सिद्धि कही भूमि मे चली गई अर्थात् वह कुछ भी काम नही आई। भोपो की भोपाई भी व्यर्थ हो गई। झूठे ज्योतिषियो की भविष्य-वाणिया झूठी सिद्ध हुई। बेचारे किसान बहुत ही दुखी हुये किन्तु बरसात नही आई।

नीचो नैणा सू धोबा जळ धावै।
ऊँचो ईखण रो अभलेखो आवै॥
गाढी गयणागण रज ले गरणाटा।
सावण सूको गो देतो सरणाटा॥

नीचे नेत्रो से अंजुलि (धोबा) भरे आँसू बह रहे हैं। मुख ऊपर कर देखने की इच्छा तो अब मन मे ही रह गई। आकाश के आगन में गहरी मिट्टी छा गई है और चक्कर लगा रही है। श्रावण सारी धरती को स्तब्ध रख कर बिन बरसे ही चला गया।

भरियो भादरवो खाली पड भागो।
लगता आसू मे आसू भड लागो॥
छपनै धोरारव आरव रव छायो।
सूरज ससि-मण्डळ गर्वित गहणायो॥

पूरा भाद्रपद का महीना बिना बरसे चला गया। आसोज के लगते ही आखो से आसुओ की झडी लग गई। छपने के अकाल की भयकर ध्वनि से चारो ओर आर्तनाद छा गया। अभिमानी सूर्य और शशि-मण्डल भी उदास हो गये जैसे उन्हे ग्रहण लग गया हो।

महिमा परमातम आतम नहि मालम।
बाल्हो धण नै तजि विलसाणो वालम॥

भाई भाई लज भूखो तब भागो ।
पग-पग पुरसा नै लूखो जग लागो ॥

परमात्मा की महिमा का आत्मा को पता नही रहा । प्रिय पत्नी से बिछुड कर पति बहुत ही दुखी हुआ । भाई अपने भूखे भाई को लज्जावश छोडकर भाग गया । यह ससार अब पुरुषो को प्रत्येक चरण पर नीरस लगने लगा ।

ठा ठा ठरडाया सुख दुख किण सूझै ।
विपदा बरडाया विपदा कुण बूझै ॥

चिंताहर नागर चिंता नह चीनी ।
करुणा सागर भी करुणा नह कीनी ॥

नर ककाल अपने शरीर को घसीटते हुये चल रहे है । किसी को एक दूसरे के सुख-दुख की चिन्ता नही है । विपत्ति मे वे प्रलाप कर रहे हैं किन्तु कोई उनका दुख पूछने वाला नही । स्वय चिन्ता हरने वाले भगवान् ने भी चिन्ता नही की । उस दयासिन्धु ने भी दया नही दिखाई ।

सैणा-सैणा सब हिलमिल दुख सैणू ।
माहो-माही मे नह दैणूं मैणो ॥

कसरा करता मे राई नह काई ।
कसरा करता मे भुगतो रे भाई ॥

सीधे-सादे और सज्जन लोगो को मिलकर दुख को सहन करना चाहिये । परस्पर एक दूसरे को दोष नही देना चाहिये । भगवान् मे तनिक भी दोष नही है । दोष तो हमारे भाग्य का है । हे भाई ! इसे भुगतो ।

डोफाई सूं डूबगो, खोटी संगत खूब ।
डूबो सो तो डूबगो, कूक मती बेवूब ॥

मूर्खता और बहुत ही बुरी सगति के कारण डूब गये । डूब तो गये ही किन्तु हे मूर्ख ! अब चिल्लाते क्यो हो ?

गुणाँ नहिं पलवे, चारुहि वर्ण निचिन्त ।
री मूढता, मिटसी दोरी मिन्त ॥
मित्र ! मारवाड से अज्ञान बहुत ही कठिनाई से मिटेगा ।
ही वर्ण (ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य और शूद्र) पढने
। नही करते ।

लोक गप्पा चरे, धरे न राजा ध्यान ।
किण विध सू सुधरे, दाखे ऊमरदान ॥
गुरु लोग दिन भर गप्पें हाकते हैं राजा भी इस ओर
। ध्यान नही देते । ऊमरदान कहता है कि फिर यह देश
। कर सकता है ?

उठत हूकाह, सू का मुनस्या री सुणा ।
आगे कूकाह, सू का सुणे न लोकरी ॥
मु शियों की बातें सुनते है तो हृदय में दर्द सा होता है ।
। आकर पुकार करें ! ये लफंगे समाज की पुकार तनिक
सुनते ।

रा बाडाह, रीत बिगाडा राज रा ।
दिन धाडाह, मुनसी पाडे मुरधरा ॥
ह से यह अत्यन्त कडुवे बोलते हैं । ये राज्य की रीति
। बिगाडते हैं । मरुधर देश में ये प्रत्यक्ष डाके डालते हैं ।

दाळद घर दोळो हुवे, परणि न आवे पास ।
रुपिया होवे रोकड़ा, सोरा आवे सास ।।

जब पास में पैसा नही होता तो घर को दरिद्रता चारं ओर से घेर लेती है, पत्नी भी निकट नही आती । यदि नकद रुपये पास में हों तो साँस भी सुख से आती है ।

कळजुग में कलदार बिन, भांदा पड़िया भेव ।
जिण घर माया जोर में. दरसण आवे देव ।।

इस कलियुग में रुपयो के विना भाइयों में भी भेदभाव उत्पन्न हो जाता है । जिस घर में सम्पत्ति की अधिकता होती है वहाँ स्वय देवता दर्शनों के लिये पधारते हैं ।

रुपया बिन रागां करे, हजार जोड़े हाथ ।
एक अधेली आंट मे, बोलो सुणले बात ।।

रुपये के अभाव में यदि आप जोर-जोर से गीत गायें और किसी के समक्ष हाथ जोड कर किसी प्रकार का निवेदन करें तब भी कोई ध्यान नही देता । यदि एक अधेला [पैसे का आधा] भी आपकी अण्टी में नकद हो तो बहरा आदमी भी आपकी बात को सुन लेगा ।

अन धन जिण घर आसरो, भला अरोगे भोग ।
पइसो हुवे न पास में, लू लू करदे लोग ।।

जिस घर में अन्न और धन विद्यमान है, उस घर के लोग अच्छे व्यजनों का भोग करते हैं । जब पास में पैसा नही होता तो यह दुनिया वेवकूफ बना देती है ।

हक्क कमायो हाथ सूं, ठावो धरिये ठांम ।
लुच्चो आवे लेणने, दीजे एक न दांम ।।

अपने हाथ से परिश्रमपूर्वक और ईमान से कमाये हुये धन को सुरक्षित रखना चाहिये । यदि कोई धूर्त लेने आये तो उसे एक कौडी भी नही देनी चाहिये ।

लेखक

डा० रामप्रसाद दाधीच 'प्रसाद'

जन्म—१, दिसम्बर १९२६

कवि, समीक्षक, अनुवादक, लोकवार्ताविद् राजस्थानी सन्त साहित्य के अध्येता। अब तक दो दर्जन से अधिक पुस्तकें प्रकाशित।

लोकसाहित्य (लोकसाहित्य केन्द्र जोधपुर) व रंगयोग (राजस्थान संगीत नाटक अकादमी, जोधपुर) जैसी उच्च कोटि की शोधपत्रिकाओं का सम्पादन।

सम्प्रति—प्राध्यापक, हिन्दी विभाग
जोधपुर विश्वविद्यालय

लेखक की एक और महत्त्वपूर्ण कृति

१ राजस्थानी लोक साहित्य अध्ययन के आयाम

यह कृति लोक साहित्य विज्ञान पर आधारित राजस्थानी लोक साहित्य के अध्ययन, शोध व समीक्षा की वैज्ञानिक व प्रामाणिक दृष्टि प्रदान करती है। विद्वानों द्वारा प्रशंसित यह एक महत्त्वपूर्ण ग्रंथ है।